Statement about ownership of CHANDAMAMA (Hindi)
Rule 8 (Form VI), Newspapers (Central) Rules, 1956

1. *Place of Publication*	...'CHANDAMAMA BUILDINGS' 188 N.S.K. Salai Vadapalani, Madras-600 026
2. *Periodicity of Publication*	...MONTHLY 1st of each calendar month
3. *Printer's Name*	...B.V. REDDI
Nationality	...INDIAN
Address	...Prasad Process Private Limited 188 N.S.K. Salai, Vadapalani Madras-600 026
4. *Publisher's Name*	...B. VISWANATHA REDDI
Nationality	...INDIAN
Address	...Chandamama Publications 188 N.S.K. Salai, Vadapalani Madras-600 026
5. *Editor's Name*	...B. NAGI REDDI
Nationality	...INDIAN
Address	...'Chandamama Buildings' 188 N.S.K. Salai, Vadapalani Madras-600 026
6. *Name & Address of individuals who own the paper*	...'CHANDAMAMA CHILDREN'S TRUST FUND Beneficieries: 1. B.V.L. ARATHI 2. B.V. SHARATH 3. B.N. RAJESH 4. B. ARCHANA 5. B.N.V. VISHNU PRASAD 6. B.L. ARADHANA 7. B. NAGI REDDI (JR)

All Minors, by Trustee:
M. UTTAMA REDDI, 14 V.O.C. Street, Madras-600 024

I, B. Viswanatha Reddi, hereby declare that the particulars given above are true to the best of my knowledge and belief.

1st March 1985

B. VISWANATHA REDDI
Signature of the Publisher

नई सुबह हुई, नई धूप जगी
नया
सनलाइट
डिटर्जेंट पाउडर
आपके कपड़ों में धूप सी चमक दमक जगाए!
आप भी अपने घर में सनलाइट की जगमगर ले आइए. नया सनलाइट डिटर्जेंट पाउडर वज़न में एकदम हल्का है, लेकिन असर में कहीं ज़्यादा है. क़ीमती पाउडरों जैसा कारगर, पर फिर भी बहुत किफ़ायती!
सनलाइट में एक ख़ास पदार्थ है, जो साधारण पाउडरों में नहीं- यह कपड़ों की रग रग से मैल निकाल कर उनमें कुदरती चमक दमक ले आता है. सनलाइट से न हाथों को तकलीफ़, न कपड़ों को नुकसान और इसकी खुशबू ऐसी ताज़ा भीनी भीनी है, जो आपके कपड़ों को भा जाएगी. आप भी सनलाइट की चमक दमक अपने जीवन में ले आइए.
एक बार आज़मा कर तो देखिए-सिर्फ़ रु.६.३५ में.
Double Power
SUNLIGHT
DETERGENT POWDER
For a brighter wash
सिर्फ़
रु. ६.३५
(स्थानीय कर अतिरिक्त)
आपके कपड़ों में धूप सी चमक दमक का वादा
OBM/2869 Hin
हिन्दुस्तान लीवर का एक उत्कृष्ट उत्पादन

चन्दामामा

संस्थापकः चक्रपाणि   संचालकः नागिरेड्डी

धन के लालच में पड़कर जो आदमी लूटपाट और हत्याएं करता है, वह उस समय भले ही सजा पाने से बच जाये, पर ऐसा दुष्ट व्यक्ति कभी न कभी किसी मौके पर अनजाने में ही अपनी असलियत प्रकट कर बैठता है और दंड का भागी बनता है, इस सच्चाई का बोध हमें 'तीतर की गवाही' नामक कहानी से हो जाता है ।

अमर वाणी

यदि दातुः सभालुब्धः, दानं तत्र हि दुर्लभम् ।
न दृश्यते कल्प तरो, मूले कंटक कुंजवत् ॥

[दानशील व्यक्ति का मित्र जब कोई लालची आदमी बन जाता है, तो उसे दान मिलना मुश्किल हो जाता है। वह लालची आदमी कल्पवृक्ष के नीचे कंटीले झाड़ जैसा दिखाई देता है ।]

वर्षः ३७   मार्च १९८५   अंकः ७

एक प्रतिः २-०० :: वार्षिक चन्दाः २४-००

चन्दामामा के संवाद

एशिया की सबसे बड़ी दूरबीन

एशिया की सबसे बड़ी दूरबीन हमारे देश के वालचन्द नगर में तैयार की गई है। १५.७ मीटर लम्बी, ८.७ मीटर चौड़ी और १२.७ मीटर ऊंची इस २३० सें० मी० की दूरबीन को 'नागरिक उड्डयन विभाग' की 'खगोल विज्ञान संस्था' काम में ला रही है।

सौ वर्ष कैसे जीवित रहें ?

दक्षिण मलेयेशिया के मुवार नगर में ओमर बेदान नाम के एक वृद्ध हैं जिनकी आयु १०६ वर्ष है। इनका कहना है कि किसी मनुष्य का सौ वर्ष तक या इससे भी अधिक समय तक जीवित रहना कोई कठिन काम नहीं है। पर जो लोग इतनी लम्बी आयु तक जीवित रहना चाहते हैं, उनके लिए ओमर बेदान की ये शर्तें हैं: सहनशीलता किसी हालत में नहीं खोनी है; दिया हुआ वचन कभी नहीं तोड़ना है; झूठ नहीं बोलना है और उधार नहीं लेना है।

अनाथ नवयुवक की ईमानदारी

हालीवुड में एरिक डी वाइल्ड नाम का सत्रह साल का एक अनाथ नवयुवक है जिसे निर्जन प्रदेशों में घूमने का बड़ा शौक है। एक बार उसे एक झाड़ी के पीछे एक थैली दिखाई दी, जिसमें कीमती आभूषण भरे हुए थे। एरिक ने उस थैली को पुलिस को सौंप दिया। करीब १४०० लोगों ने उस थैली के धन पर अपना दावा किया, पर कोई भी उसे अपनी सम्पत्ति साबित नहीं कर सका। फ्लोरिडा के कानून के मुताबिक़ वह थैली एरिक को ही सौंप दी गई। उसमें जो आभूषण थे, उनका मूल्य ३५ करोड़ रुपये आंका गया है।

क्या आप जानते हैं ?

१. एशिया के सबसे, बड़े टापू का नाम क्या है ?

२. वर्तमान स्पेन और पुर्तगाल के प्रदेशों का पुराना नाम क्या है ?

३. वह कौन सा शहर है जो इजरायल का प्रमुख बन्दरगाह है ?

४. क्या आप बता सकते हैं कि स्वेज नहर के प्रारम्भ में और अंत में कौन से बन्दरगाह वाले नगर हैं ?

५. सोवियत रूस और अफगानिस्तान की सीमा पर बहने वाली नदी का नाम क्या है ?

दो मालिक

दो पड़ोसी थे। उनमें एक का नाम सीताराम और दूसरे का नाम गंगाराम था। छोटी-छोटी बातों पर परेशान हो जाना सीताराम की आदत थी, लेकिन वज्रपात होने पर भी दृढ़ बने रहना गंगाराम का स्वभाव था।

एक दिन की बात है, सीताराम के घर में चांदी के चार सिक्के खोगये। उसने सारा घर छान मारा, पर सिक्के न मिले। हार कर उसने अपनी पत्नी को सिक्के खोने की बात बता दी और पूछा, "कहीं तुमने तो सिक्के नहीं उठाये ?"

"तुमसे पूछे बगैर क्या मैंने कभी एक पाई भी छुई है ?" पत्नी ने जवाब दिया।

अब सीताराम ने अपने बेटे को बुलाकर पूछा। उसने भी यही जवाब दिया कि वह सिक्कों की बाबत कुछ नहीं जानता।

इसके ब़ाद सीताराम की पत्नी और बेटे ने घर का कोना-कोना ढूंढ़ लिया, सिक्के न मिले। आख़िर सीताराम की पत्नी ने अपने पति को समझाया, "देखो, तुम आले में पैसे रखे छोड़ देते हो, यह अच्छी आदत नहीं है। इधर हमारी नौकरानी हर चीज़ पर आंख रखने लगी है। कभी इमली पर हाथ साफ करती है तो कभी दाल-चावल की पोटली बना कर ले जाती है।"

"पिताजी, मां सच कह रही हैं। परसों मैंने उसे चोरी करते खुद अपनी आंखों से देखा।"

"तब तुमने क्या किया ?" सीताराम ने अपनी पत्नी से पूछा।

"वह बड़ी ढीठ है। जब मैंने उससे पूछा कि तू चावल क्यों बांध रही है तो फटाक से बोली, 'माई, तुम्हीं ने तो चावल ले जाने को कहा, अब मना कर रही हो तो वापस बोरे में डाल देती हूं'— बस इस सफाई के बाद मैं चुप लगा गयी और कह दिया, ले जा।"

"तब तो तुमने उसे चोरी करने का पूरा गुर सिखा दिया। आज सिक्के खोगये, कल कुछ और खो जायेगा।" यह कहकर सीताराम ने

अपनी पत्नी को खूब डांटा ।

इस पर बेटे ने दखल दिया और बाप को समझाया, "पिताजी, अब नौकरानी को दोष देने से क्या फ़ायदा ? उचित तो यही है कि रुपये-पैसे के मामले में हम पहले से ही सावधान रहें ।"

बेटे की बात सुनकर तो सीताराम का पारा और भी चढ़ गया । वह चिल्ला-चिल्लाकर मां-बेटे को डांटने लगा कि वे दोनों धन की क़ीमत बिलकुल नहीं जानते । सीताराम की चीख-चिल्लाहट सुनकर अड़ोस-पड़ोस के तमाम लोग वहां पर इकट्ठा होगये । सब अपनी-अपनी राय देने लगे । कोई सारी गलती सीताराम की बताता तो कोई सारा दोष उसकी पत्नी या बेटे के मत्थे मढ देता ।

इतना सब होने पर भी सीताराम शांत नहीं हुआ । उसने दो दिन तक घर में खाना नहीं खाया । सीताराम की पत्नी पास-पड़ोसिनों से सब हकल कहकर अपना दुख बांटती । आखिर एक दिन यह घटना भुला दी गयी । सीताराम भी सिक्के खोने की बात बिलकुल भूल गया ।

जिस दिन यह सारा हो-हल्ला मचा था, उस दिन गंगाराम गांव में न था । लेकिन उसकी पत्नी गांव में ही थी । गंगाराम एक हफ़्ता शहर में बिताकर घर लौटा ।

अब गंगाराम की बारी थी । जिस दिन वह शहर से गांव लौटा, उसके अगले ही दिन उसके घर में दस चांदी के सिक्के खो गये । उसने भी सारा घर छान मारा, जब सिक्के न मिले तो अपनी पत्नी को सब हाल बताकर पूछा, "कहीं तुमने तो सिक्के नहीं लिये ?"

पत्नी ने बताया कि उसने नहीं लिये । बेटे से पूछने पर उसने भी इनकार में सिर हिलाया । सीताराम के घर की नौकरानी ही गंगाराम के घर में भी झाड़ू-बुहारी का काम करती थी ।

सिक्के खोने की बांत पर गंगाराम की पत्नी को सीताराम के घर हुई चोरी की बात याद आगयी । उसने कहा, "हो न हो, यह काम नौकरानी का है । उसने सीताराम के घर में भी आठ दिन पहले चार सिक्के चुराये थे ।"

"क्या तुमने अपने घर में इस नौकरानी को चोरी करते हुए पहले कभी देखा है ?"

"नहीं, देखा तो नहीं !" पत्नी ने कहा ।

"सुनो, जो लोग नौकरों के प्रति दया का भाव रखते हैं और आफ़त के समय उनकी मदद करते हैं, उनके यहां कभी चोरियां नहीं होतीं। जो मालिक काम तो ज्यादा लेते हैं और पैसा कम देते हैं, उनके घरों के नौकर-चाकर ढीठ स्वभाव के हो जाते हैं। शायद मेरे हिसाब में ही कुछ भूल-चूक होगयी हो, अभी तुम चुप रहो।" गंगाराम ने पत्नी को समझाया।

"ऐसे हम कैसे चुप रह सकते हैं ? नौकरानी को डरा-धमकाकर उसके मुंह से सच्ची बात निकालनी होगी।" गंगाराम की पत्नी ने कहा।

इस पर गंगाराम खीज उठा, बोला, "सुनो, आज तक तो हमारे घर में चोरी हुई नहीं। मेरे ख्याल से तो अब भी ऐसी बात नहीं होनी चाहिए। अगर हुई है तो मेरी असावधानी की वजह से। बस, बात ख़त्म !"

"फिर भी, नौकरानी को बुलाकर एकबार पूछ लेने में हर्ज़ ही क्या है ?"

"अगर सचमुच ही उसने चोरी नहीं की होगी, तो चोरी की बात सुनकर उसे गुस्सा आ जायेगा। वह चोर नहीं भी होगी तो यह सोचकर चोरी करना शुरू कर देगी कि ज्यादा ईमानदार रहना भी ठीक नहीं, नाहक़ चोरी का इलज़ाम लग गया। जब ईमानदार रहने पर भी विश्वास नहीं है तो चोरी करने में क्या बुराई है ! हमें ऐसा मौक़ा नौकरानी को नहीं देना चाहिए, समझी !" गंगाराम ने समझाया।

गंगाराम की पत्नी को यह सफाई अच्छी नहीं लगी। वह भी खीज उठी, बोली, "तुम्हारा स्वभाव ही ऐसा है। दस सिक्के खोने के बावजूद
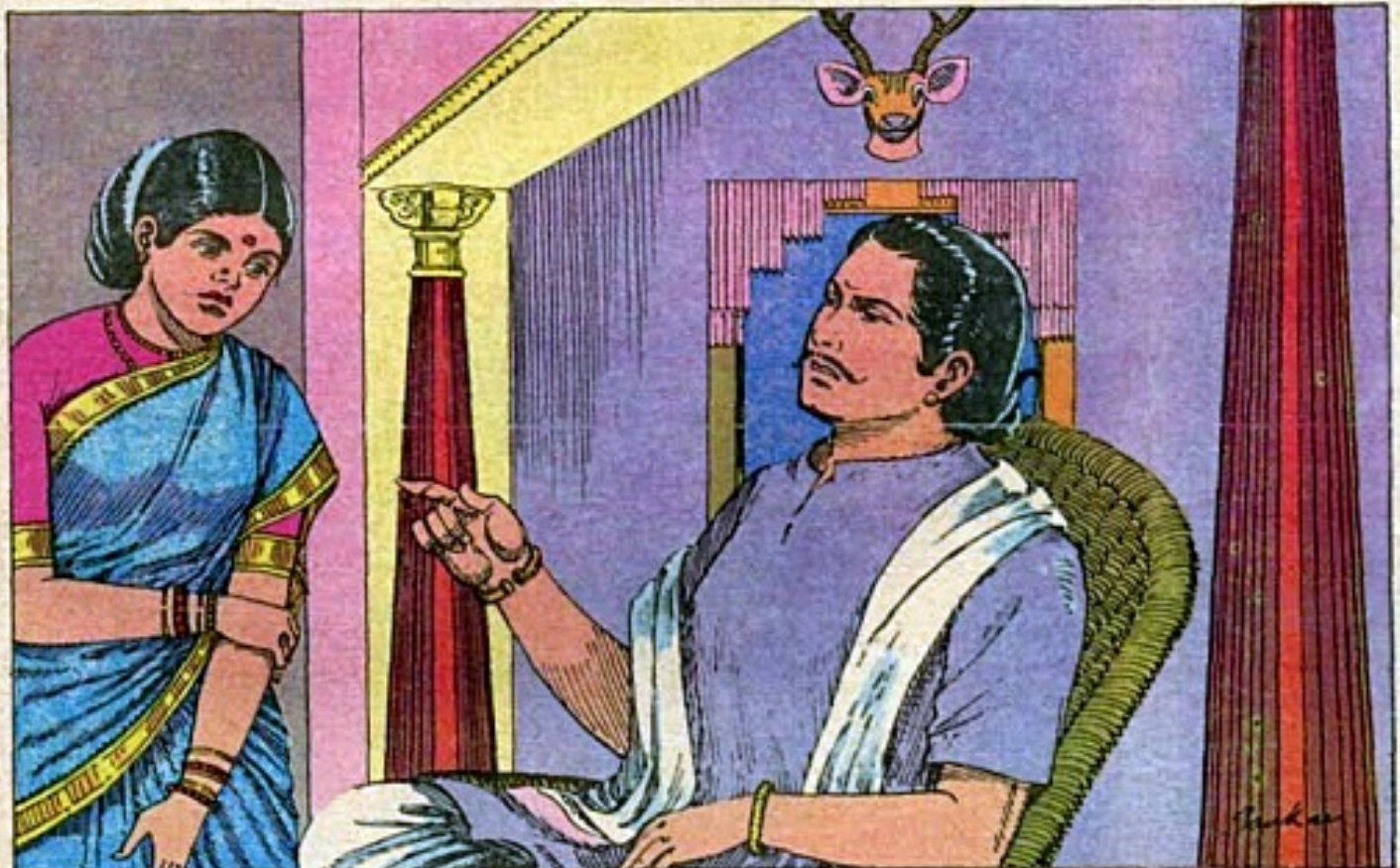
तुम्हारे दिल में ज़रा भी ग़म नहीं । सीताराम के घर में चार सिक्के खोगये तो सारे मुहल्ले में हंगामा मच गया ।"

"अगर ऐसा है तो चलो सीताराम के घर जाकर ही सारी बात का पता लगाते हैं ।" गंगाराम ने अपनी पत्नी को साथ लिया और सीताराम के घर पहुंचा ।

भाग्य से सीताराम घर पर ही मिल गया । गंगाराम को देखते ही सीताराम ने उसका स्वागत करते हुए कहा, "आओ गंगाराम ! कैसे आना हुआ ?"

"खास कुछ नहीं ! सुना है इधर तुम्हारे घर में चार सिक्के खो गये । काफ़ी हो- हल्ला हुआ । बात क्या है, सब बताओ । मैं उस दिन गांव में नहीं था ।"

सीताराम मुस्करा कर बड़े गर्व से बोला, "अच्छा तो यह बात है ! समझ लो, उस दिन मैंने अपनी पत्नी और बेटे को ऐसा सबक सिखाया कि सारा गांव मेरे घर के सामने इकट्ठा हो गया ।"

"तो क्या खोये सिक्के वापस मिल गये ?"

"नहीं, मिले तो नहीं, पर तुम्हारे इस तरह पूछने का मतलब क्या है ?" सीताराम अचरज में भर कर बोला ।

"वैसे कोई खास मतलब तो नहीं है । पर अगर तुम्हारे सिक्के तुम्हें वापस मिल गये हों तो मुझे बता दो । मैं भी इसी तरह शोर-शराबा करके सारा गांव यहां इकट्ठा कर लूंगा, और मुझे भी मेरे सिक्के मिल जायेंगे । दरअसल, बात यह है सीताराम, कि मेरे भी दस सिक्के खो गये हैं ।" यह कहकर गंगाराम उठा और पत्नी को साथ लेकर घर लौट गया ।

अपने पति की सीताराम से यह बातचीत सुनने के बाद गंगाराम की पत्नी का समाधान होगया । उसे इस सत्य का बोध हुआ कि कोई भी समस्या हंगामा मचाने या क्रोध करने से हल नहीं होती, उसे विवेक से सुलझाना चाहिए । इसके बाद गंगाराम के घर में कभी चोरी नहीं हुई, जबकि सीताराम के घर से जब-तब कोई न कोई चीज़ ग़ायब होती रही ।

४

[सुबाहु ने भिखारी का नाटक किया और सर्पकेतु के सैनिकों के चंगुल से बच गया। सर्पकेतु के सैनिक छल-कपट का प्रयोग करके वीरपुर नगर के द्वार खोल शहर में घुस गये। इस ख़तरे की सूचना अपने मालिक चंद्रवर्मा को देने के लिए सुबाहु राजमहल की तरफ दौड़ा। अब आगे पढ़िए...]

सुबाहु उस समय तो ख़तरे से बच गया, पर कुछ लोगों के क़दमों की आहट पाकर उसने भांप लिया कि सर्पकेतु के सैनिक उसका पीछा कर रहे हैं। कुछ रुक कर पीछे मुड़कर देखने तक का मौक़ा नहीं था। वह लगातार भाग रहा था। उसकी सारी ताक़त इस बात पर केंद्रित थी कि तेज़ गति से दौड़कर किसी तरह जल्दी से जल्दी राजमहल पहुँच जाये और युवराज चंद्रवर्मा को सारी स्थितियों की सूचना दे दे, ताकि युवराज जल्दी से जल्दी कोई ऐसा क़दम उठा सकें कि दुश्मनों को मुंह की खानी पड़े।

पीछे का शोरगुल, नारे-चिल्लाहटें पास आती जा रही थीं। इतने में सुबाहु राजमहल के सामने के फुव्वारे की ओट लेकर राजमहल के द्वार पर पहुँच गया और पहरेदार सैनिकों को संबोधित कर बोला, "मैं सुबाहु हूं, मुझे अन्दर जाने दो। जो मेरा पीछा कर रहे हैं, वे सर्पकेतु

के सैनिक हैं। किसी भी तरह के धोखे में मत आना। जल्दी से जल्दी उन्हें रोको और हमारे सभी सैनिकों को सावधान कर दो !"

पहरेदारों ने सुबाहु के लिए मार्ग छोड़ दिया और सुबाहु उछल कर राजमहल में पहुँच गया।

इस बीच सर्पकेतु के सैनिकों को सामने देखकर पहरेदारों ने अपनी तलवारें खींच लीं और डटकर उनका सामना किया। इधर पहरेदारों और सर्पकेतु के सैनिकों के बीच लड़ाई चल रही थी, उधर सुबाहु भागते हुए महल की सीढ़ियां चढ़ गया और अपने स्वामी चंद्रवर्मा को पुकार कर बोला, "युवराज ! जल्दी कीजिए ! हमारे सामने भयंकर ख़तरा पैदा हो गया है। सर्पकेतु के सैनिक नगर में घुस आये हैं और सारे नगर को उजाड़ रहे हैं।"

सुबाहु के चिल्लाने की आवाज़ सुनकर गहरी नींद सोने वाला चंद्रवर्मा चौंक कर उठ खड़ा हुआ और दौड़कर शयनकक्ष के बाहर आया। महल के सामने वाले राजपथ पर भयानक कोलाहल हो रहा था। वह सकते में आ गया। चंद्रवर्मा दौड़कर छत पर गया और मुंडेर के पास खड़े होकर उस दिशा में देखने लगा, जिधर से कोलाहल आ रहा था। तभी सुबाहु हाँफते हुए वहां आ पहुँचा और बोला, "युवराज, सर्पकेतु के सैनिक दग़ा देकर नगर के द्वार खोलकर अन्दर घुस आये हैं। हमारे सैनिकों को सावधान कर दीजिए। शायद अब तक शत्रु के सैनिक महल के आँगन में घुस भी आये होंगे हमें जल्दी से जल्दी इस ख़तरे का प्रतिकार करना चाहिए।"

चंद्रवर्मा क्षण भर के लिए जड़वत हो गया। इतने में राजमहल के दोनों तरफ की इमारतों से आग की लपटें उठने लगीं। साथ ही घोड़ों की हिनहिनाहट, सैनिकों की आवाज़ और औरत-बच्चों के आर्तनाद से आकाश गूंज उठा।

चंद्रवर्मा सुबाहु की तरफ घूम पड़ा और उसने चिन्तित हो पूछा, "मेरे पिताजी कहां हैं ? उनके साथ तुम महाराजा यशोवर्द्धन के पास गये थे न ! यह सब कैसे हुआ, मुझे सब बताओ !"

प्रश्न सुनकर सुबाहु काँप उठा। युवराज को क्या जवाब दे। उसने बड़ी कोशिश की, पर

मुंह से बोल नहीं निकला। उसने अपने को संयत किया और विवेक से काम लेना ही ठीक समझा। इस खतरे की हालत में चंद्रवर्मा को महाराज सूर्यवर्मा की मौत का समाचार सुनाना उसे हितकर न लगा। पिता की मौत से कुमार की शक्ति क्षीण हो जायेगी और वे शत्रु का सामना ठीक से न कर सकेंगे, इसलिए सबसे पहले धूर्त सर्पकेतु के अनुचरों का सर्वनाश हो, फिर मौक़ा पाकर वह सारी बातें युवराज को बता देगा।

एक क्षण में ही यह सब सुबाहु के मन में कौंध गया और वह चंद्रवर्मा से बोला, "युवराज, आपके पूज्य पिता वीरपुर के पथ पर हैं। अभी आप उनकी चिन्ता मत कीजिए। संकट की घड़ी है, फिलहाल आप यहां क्या करना है, उसका विचार कीजिए। सर्पकेतु के सैनिक नगर में घुसकर मकानों में आग लगा रहे हैं। वे किसी भी समय राजमहल में घुस सकते हैं।"

इतने में महल की सीढ़ियों पर किसी के चढ़ने की आवाज़ सुनाई दी। सुबाहु मन में कांप उठा, कहीं शत्रु-सैनिक ही तो नहीं आ पहुँचे। वह एक ही छलांग में चंद्रवर्मा के शयनकक्ष में गया और वहां दीवार पर लटक रही दो तलवारें लेकर बाहर आगया। उसने एक तलवार चंद्रवर्मा के हाथ में दे दी।

उसी समय सीढ़ियों पर से आवाज़ आयी, "युवराज! युवराज!" उस आवाज़ को पहचान कर चंद्रवर्मा चिल्ला उठा, "कौन, सेनापति!"
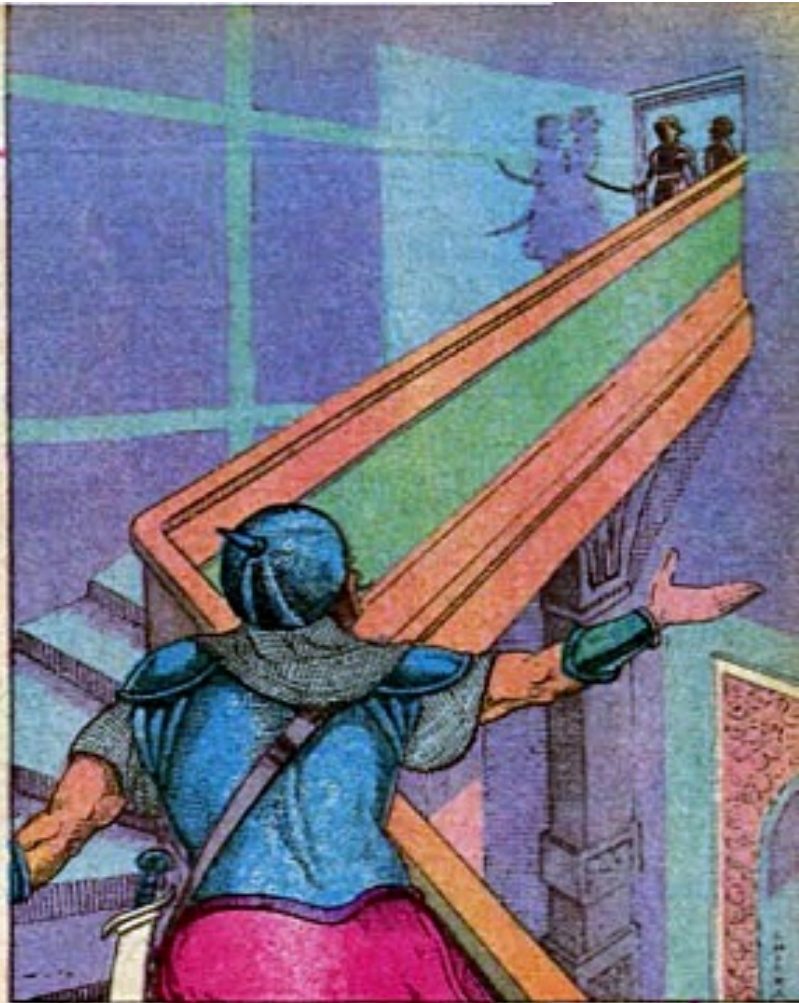
वह वीरपुर का सेनापति धीरमल्ल था। वह दौड़कर सीधा चंद्रवर्मा के पास पहुंचा और बोला, "युवराज! ख़तरा बढ़ता जा रहा है। मेरी समझ में नहीं आता कि महाराज यशोवर्द्धन क्यों हमारे दुश्मन होगये हैं? उनके भेजे सैनिक नगर में घुस आये हैं। घरों में आग लगाकर उन्हें लूट रहे हैं। नगर के कुछ लोग भी उन सैनिकों के साथ मिल गये हैं;अब हमें क्या करना चाहिए? शत्रु-मित्र का भेद समझ में नहीं आ रहा है।"

यह बात सुनते ही कि महाराज यशोवर्द्धन ने वीरपुर में अपने सैनिक भेजे हैं, चंद्रवर्मा सिर से

पैर तक काँप उठा और वह सेनापति से कुछ कहने ही जा रहा था कि सुबाहु बीच में ही बोल उठा, ''युवराज ! ये सैनिक महाराज यशोवर्द्धन के भेजे हुए नहीं हैं। यह हमारे नगर में घुसने के लिए और हमें धोखा देने के लिए बनाया गया सर्पकेतु का व्यूह है। मैंने छद्मवेश में सारे भेद लिये हैं और इन सैनिकों के साथ ही नगर में आया हूं।... और जो लोग नागरिक पोशाकों में सैनिकों की मदद कर रहे हैं, वे हमारे नगरवासी नहीं हैं। वे सब राज्य की सीमा पर के गांवों के रहनेवाले हैं। सर्पकेतु के सैनिक उन्हें नगर लूटने का लोभ दिखाकर यहां तक लाये हैं।''

सब समाचार सुनकर सेनापति धीरमल्ल हकाबक्का रह गया। फिर युवराज की तरफ मुखातिब होकर वह बोला, ''सुबाहु की बातें सच मालूम होती हैं। सर्पकेतु पडयंत्र रचने में बड़ा प्रवीण है। महाराज माहिष्मती नगर में गये हुए हैं। सर्पकेतु उनके लिए ख़तरा पैदा कर सकता है।''

''सेनापति ! पहले आप इस बात पर विचार कीजिए कि हम यहां के ख़तरे से कैसे बच सकते हैं ? महाराज की बात हम यहां के खतरे को नियंत्रण करने के बाद सोचेंगे। पहले आप सैनिक-संगठन कर शत्रु को नगर से बाहर खदेड़ने का उपाय कीजिए !'' सुबाहु ने जल्दी-जल्दी कहा।

चंद्रवर्मा ने सुबाहु की बात की स्वीकृति में सिर हिलाया और बड़ी आतुरता से सेनापति से पूछा, ''सेनापति, राजमहल की सुरक्षा का पूरा प्रबन्ध होना चाहिए, इसके लिए आपने क्या व्यवस्था की है ?''

सेनापति धीरमल्ल ने कहा, ''युवराज ! कुछ सैनिक महाराज यशोवर्द्धन की जयकार करते महल के प्रांगण में घुस आये, मगर उसी समय हमारे राजसैनिकों ने उनका सामना कर उन्हें काट डाला। सुबाहु ने पहले ही पहरेदारों को चेतावनी दे दी थी कि वे सर्पकेतु के सैनिक हैं इसलिए किसी तरह के धोखे में नहीं आना चाहिए। अच्छा हुआ कि इस षडयंत्र का भंडाफोड़ समय से होगया।...''

''सेनापति ! आप सैनिक-संगठन कीजिए। कुछ राजसैनिकों को महल के पहरे पर नियुक्त

कीजिए। बाकी सैनिकों को साथ लेकर हम नगर में घुस आये सर्पकेतु के सैनिकों से निपटते हैं।" युवराज ने सेनापति को आदेश दिया।

"युवराज ! यहां का सारा प्रबन्ध मैं कर चुका हूं। महाराज यशोवर्द्धन की जयकार ने मुझे विकल बनाया, इसलिए मैं आपके पास दौड़ चला आया। आप यहां के बारे में निश्चिन्त रहें और मुझे आगे के कार्य के बारे में आज्ञा दें।" सेनापति धीरमल्ल ने कहा।

इस बीच नगर में कई जगह आग लग चुकी थी। भयानक शोलों का विस्फोट सुनाई दे रहा था। सब तरफ़ चिल्लाहटें और आर्तनाद सुनाई दे रहे थे। चंद्रवर्मा ने चारों तरफ निगाह दौड़ाई और आग की लपटों में भस्म हो रहे नगर को व्याकुल दृष्टि से देखा। बड़ा विकट दृश्य सामने था। उसके पिता ने जिस प्रजा को सन्तान की तरह रक्षण दिया था, आज वह खतरे में पड़ी थी। उसने गहरी साँस ली और सीढ़ियां उतर कर महल के सामने आ खड़ा हुआ। वहां करीब पांच सौ सशस्त्र सैनिक कतार में खड़े दिखाई दिये। उनकी बगल में कुछ घुड़सवार सैनिक बड़े-बड़े भाले लिये हुए लड़ाई के लिंए तैयार थे।

चंद्रवर्मा ने पचास पैदल और दस घुड़सवार सैनिकों को राजमहल की रक्षा के लिए नियुक्त किया और बाकी सैनिकों को दो समान दलों में बांट दिया। एक दल को सेनापति धीर मल्ल के नेतृत्व में सौंपकर युवराज ने कहा, "सेनापति ! मैं नगर का द्वार पार कर पूर्वी दिशा में मुड़ जाऊँगा, आप इन सैनिकों के साथ पश्चिमी दिशा में चले जाइए। हम दोनों दो दिशाओं से शत्रु-सैनिकों को भेद कर अर्ध चंद्राकृति में मुड़कर उत्तरी द्वार पर पहुंच जायेंगे। अगर... ईश्वर का निर्णय हमारे सोचे हुए के विरुद्ध हुआ... तो उस समय जैसी स्थिति होगी, हम दोनों स्वतंत्र रूप से अपना-अपना निर्णय लेंगे। इसके अलावा मुझे तो और कोई उपाय नहीं सूझता।"

"जो आज्ञा, युवराज ! पर कृपया जोश में आकर आप ख़तरे में न पड़ जाइएगा। स्थिति कुछ ऐसी आगयी है कि चारों तरफ अंधेरा नजर आ रहा है और हमें दुश्मन की ताक़त का पता

नहीं चल रहा है ।" धीरमल्ल ने युवराज को सचेत किया ।

इसके बाद उन दोनों का सैन्यदल 'महाराजा सूर्यवर्मा की जय' के नारे लगाता हुआ राजमहल की सीमा पार कर नगर के मध्य भाग में पहुंच गया । तब तक पूर्वी दिशा में भोर का तारा उदित हो चुका था । हथियारों से लैस सुबाहु ने बगल के घोड़े पर सवार चंद्रवर्मा को आसपास जल रहे घरों को दिखाकर कहा, "युवराज ! सर्पकेतु किसी हद तक अपने षडयंत्र में सफल हुआ है । वह कुटिल और चालाक अवश्य है, फिर भी उसकी सेना में प्रशिक्षित सैनिकों की संख्या बहुत ही कम है । ज्यादातर लोग देहाती हैं, जो लूटपाट करने के इरादे से आये हैं । इन लोगों से लड़ना कोई कठिन बात नहीं होगी । अगर हम लोग अत्यन्त बेरहमी से कुछ लोगों को गाजर-मूली की तरह काट सकें तो बाक़ी लोग खुद ही जान हथेली पर लेकर भाग जायेंगे । आप क्या सोचते हैं ?"

चंद्रवर्मा को यह सुझाव समय के अनुकूल प्रतीत हुआ । उसने अपने दल के सैनिकों को हमले का आदेश दिया और जो लोग मशालें लेकर इतना कोहराम मचा रहे थे, अचानक ही वे घुड़सवारों के भालों की चोट से आर्तनाद कर उठे । वह सारा इलाका 'सूर्यवर्मा के सैनिक आगये, सूर्यवर्मा के सैनिक आ गये' ... नारों से गूंज उठा । उसी क्षण राजपथ के दोनों तरफ की संकीर्ण गलियों से ये पुकारें सुनाई दीं, "क्या कहा ? सूर्यवर्मा के सैनिक ? कहां हैं ? कहां पर हैं ?" इस तरह चिल्लाते हुए लोगों को अपनी तरफ बढ़े चले आरहे घोड़ों की टापें सुनाई दीं ।

शत्रु-दल का संहार करने के लिए चंद्रवर्मा को यह एक सुनहरा मौक़ा लगा । उसने अपने दल के आधे सैनिकों को गली के एक तरफ़ नाकेबन्दी करने की आज्ञा दी और खुद दूसरी तरफ सतर्क खड़ा हो गया । राजपथ की तरफ बढ़ रहे शत्रु-दलों को समाप्त करने का यह मौका चंद्रवर्मा छोड़ना नहीं चाहता था । वह शत्रु-सेना को अंधाधुंध मौत के घाट उतारना चाहता था ।

उसकी योजना कामयाब हुई। अपनी करतूतों और नगर की बरबादी से खुश होरहे सर्पकेतु के सैनिक विवेक खो बैठे। राजपथ पर अब उन्हें किसी तरह के ख़तरे का अन्देशा न था। विजय की खुशी में झूमते-झामते वे अपने घोड़ों को बढ़ाते हुए राजपथ तक चले आये। गली के दोनों तरफ चौकन्ने खड़े चंद्रवर्मा के सैनिक अपनी पूरी ताक़त से उन घुड़सवारों पर टूट पड़े। सर्पकेतु के सैनिक आगे-पीछे दोनों तरफ से घिर गये थे। इस वीभत्स कांड से अपनी जान बचाने के लिए जैसे ही वे पीछे मुड़ते, चंद्रवर्मा के सैनिक उन्हें अपने भालों से बींध देते। सर्पकेतु के अधिकांश सैनिक चंद्रवर्मा के सैनिकों के हाथ मौत के घाट उतार दिये गये। गली लाशों से पट गयी। इनमें जो लोग जिन्दा थे या जिनकी साँसें अभी धीरे-धीरे चल रही थीं, वे भी इस भगदड़ में कुचल गये।

इस जीत ने चंद्रवर्मा के सैनिकों के अन्दर अपूर्व आत्मविश्वास भर दिया। वे बड़े उल्लास से 'महाराजा सूर्यवर्मा की जय' चिल्लाते और राजपथ पर जो भी शत्रु सैनिक या देहाती लुटेरे दिखाई देते, उन्हें अपने भालों और तलवारों से बींध कर छलनी कर देते। वीरपुर के नागरिक भी अपने युवराज को शत्रुओं का सामना करते देख उत्साह में आगये और जो भी हथियार हाथ लगा, उसे लेकर दुश्मन पर टूट पड़े।

सामने जो भी शत्रु दिखाई-पड़ता, उसका अन्त करते हुए चंद्रवर्मा उत्तरी द्वार पर जा

पहुँचा। उसी समय, दूसरी दिशा में गया हुआ सेनापति धीरमल्ल भी कुछ दूर पर दिखाई दिया। धीरमल्ल को भी अपने मोर्चे पर विजय मिली थी, फिर भी वह बड़ा चौकन्ना होकर युवराज द्वारा बताये गये स्थान की तरफ बढ़ रहा था। पर यह क्या ? उसके पीछे एक विशाल घुड़सवार दल चला आ रहा था। धीरमल्ल को इस बात का पता न था कि दुश्मन यहाँ पर भी उसका पीछा कर रहा है। वह यह सोच कर निश्चिन्त था कि वह अपने रास्ते के काँटे को हटा चुका हूँ। इस लिए उसका आत्म विश्वास बढ़ गया। अपनी विजय की सूचना शीघ्र से शीघ्र युवराज चंद्रवर्मा को देने केलिए बड़ी आतुरता के साथ, लेकिन सतर्क हो कर बढ़ रहा था,

धीरमल्ल चन्द मिनटों में ही चंद्रवर्मा के पास आ पहुंचा और बोला, "युवराज ! हमें शीघ्र राजमहल वाले दुर्ग में पहुंचना श्रेयस्कर होगा। क्योंकि सर्पकेतु अतिरिक्त सेना के साथ स्वयं नगर में पहुंच गया है। उसकी विशाल लेकिन शत्रुसेना को चंद्रवर्मा ने देख लिया था और उसके अन्दर विजय का सारा उल्लास फीका पड़ गया था।
चंद्रवर्मा केलिए यह अप्रत्याचित घटना थी। इस के दो कारण थे, एक तो उसे अपनी सेना का संगठन व्यवस्थित रूप से कर नहीं सकता था, दूसरी बात यह थी कि दुश्मन ने न केवल अचानक दुर्ग पर धावा बोल दिया बलिक जनता को उभाड़ कर अंधा धुंध लूटने का मौका दिया। साथ ही चंद्रवर्मा दुश्मन की चाल से बिलकुल अनभिज्ञ था। फिर भी वह हिम्मत हारने को तैयार न था।
सेना के साथ हमारी छोटी सी सेना का जूझना आत्महत्या के समान होगा। दुर्ग की रक्षा को आधार बनाकर हम युद्ध करेंगे। इस बीच, हो सकता है, सीमा पर स्थित हमारी सेना मदद के लिए पहुंच जाये।"

सर्पकेतु और सेना के साथ नगर में प्रवेश कर चुका है, यह समाचार चंद्रवर्मा को वज्रपात जैसा लगा। इसका मतलब तो यह हुआ कि उसने कपट-युद्ध का आसरा त्याग कर अब प्रत्यक्ष रूप से युद्ध करने की ठान ली है।

फिर क्या था, चंद्रवर्मा ने झट अपने घोड़े को पीछे मेड़ लिया। सुबाहु और धीरमल्ल ने अपने-अपने घोड़ों को चंद्रवर्मा के दोनों तरफ कर लिया। सैनिक भी पीछे-पीछे चले। वे अत्यन्त तेज़ गति से राजमहल की तरफ बढ़ चले। रास्ते में कहीं भी शत्रु उनके सामने नहीं आया। लेकिन जब वे लोग राजमहल के समीप पहुंचे तो देखा, द्वार के सामने दुश्मन के पैदल और घुड़सवार सैनिकों की टोलियां खड़ी हैं और अगली पंक्ति के लोग प्रवेशद्वारों को तोड़ने की जी तोड़ कोशिश कर रहे हैं। इतना देखते ही चंद्रवर्मा ने भयंकर गर्जना की और अपने सैनिकों के साथ उन पर हमला कर दिया।

(क्रमशः)
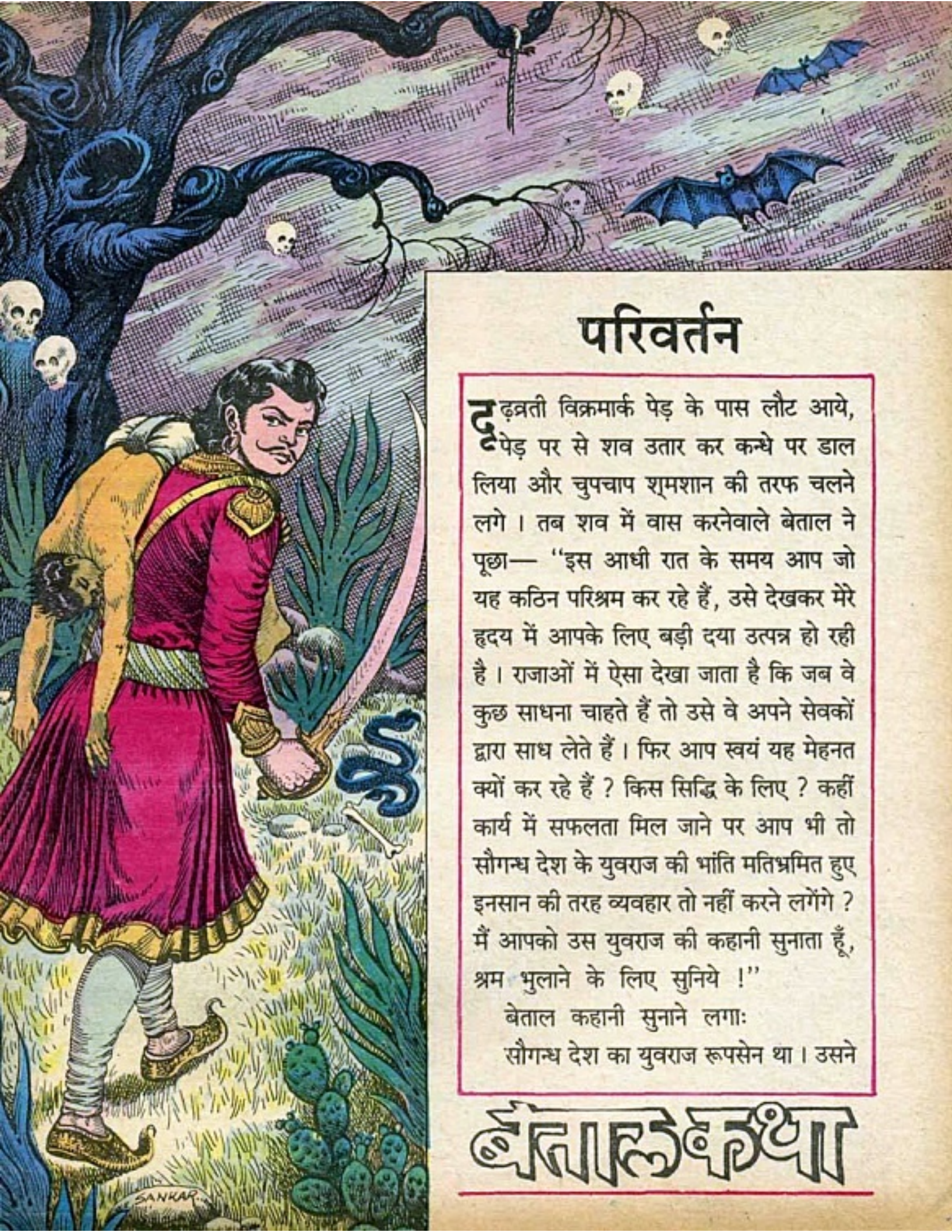
परिवर्तन

दृढ़व्रती विक्रमार्क पेड़ के पास लौट आये, पेड़ पर से शव उतार कर कन्धे पर डाल लिया और चुपचाप श्मशान की तरफ चलने लगे। तब शव में वास करनेवाले बेताल ने पूछा— "इस आधी रात के समय आप जो यह कठिन परिश्रम कर रहे हैं, उसे देखकर मेरे हृदय में आपके लिए बड़ी दया उत्पन्न हो रही है। राजाओं में ऐसा देखा जाता है कि जब वे कुछ साधना चाहते हैं तो उसे वे अपने सेवकों द्वारा साध लेते हैं। फिर आप स्वयं यह मेहनत क्यों कर रहे हैं? किस सिद्धि के लिए? कहीं कार्य में सफलता मिल जाने पर आप भी तो सौगन्ध देश के युवराज की भांति मतिभ्रमित हुए इनसान की तरह व्यवहार तो नहीं करने लगेंगे? मैं आपको उस युवराज की कहानी सुनाता हूँ, श्रम भुलाने के लिए सुनिये!"

बेताल कहानी सुनाने लगा:

सौगन्ध देश का युवराज रूपसेन था। उसने

बेताल कथा

अपने आचार्यों के गुरुकुलों में रह कर राजोचित सभी विद्याएं सीख लीं। खास कर ललित कलाओं के प्रति उसकी बड़ी अभिरुचि थी। अगर युवराज के अन्दर कोई कमी थी तो इतनी ही कि वह हद से ज़्यादा चिढ़ जाता था। तुनकमिजाज़ होने के कारण वह जब भी चिढ़ता, तो जल्दबाजी में आकर कुछ अवांछित कार्य कर बैठता था। अपने पुत्र के इस व्यवहार पर वृद्ध महाराज गुणसेन युवराज के भविष्य के बारे में चिन्तित रहा करते थे।

एक दिन रूपसेन बगीचे में टहल रहा था। उसे कुछ दूर से आता मधुर संगीत सुनाई दिया। जब गीत समाप्त हुआ तो उसने अपने सेवक को आदेश दिया कि गीतकार को उसके सामने लाया जाये। वह गायिका और कोई नहीं, महारानी की प्रिय सखी चंद्रवती थी।

रूपसेन ने कहा, "चंद्रवती, मुझे आज तक मालूम न था कि तुम इतना अच्छा गाती हो! क्या इस गीत की रचना स्वयं तुमने की है?"

चंद्रवती ने विनयपूर्वक उत्तर दिया, "कभी संगीत के एक आचार्य इस गीत को गा रहे थे, मैंने सुनकर यह गीत सीखा है।"

"इतनी मधुर, कोमल भावनाओं को गीत में पिरोने वाले उन आचार्य को मैं देखना चाहता हूँ।" रूपसेन ने कहा और दूसरे दिन चंद्रवती के द्वारा उन आचार्य को बुलवा भेजा।

आचार्य के आने पर रूपसेन ने उनका उचित सत्कार किया, फिर पूछा, "आचार्यवर! आपने जिस गीत के राग को इतना मधुर बनाया है, क्या उस गीत को भी आपने ही रचा है या...?"

"नहीं प्रभु! मेरे एक मित्र ने इस गीत की रचना की है। मैंने तो इसे केवल संगीत बद्ध किया है।" आचार्य ने उत्तर दिया।

रूपसेन ने कवि को निमंत्रित किया और आने पर उसका महान सम्मान किया। युवराज से इतना समादर पाने पर कवि ने कहा, "प्रभु! इस गीत को इतना मधुर बनाने का श्रेय मेरे चित्रकार मित्र वसन्तमिश्र को प्राप्त होना चाहिए। उसने जो चित्र खींचा है, उसमें अंकित युवती के सौन्दर्य, लावण्य तथा मुखमण्डल पर प्रतिबिम्बित हो रहे संस्कार पर मुग्ध होकर मैंने यह गीत रचा है।"

इस पर रूपसेन ने अपने सेवकों को आदेश दिया कि कवि को आकर्षित करनेवाले उस चित्र के साथ चित्रकार को भी यहां उपस्थित किया जाये। चित्रकार उस चित्र के साथ युवराज के सामने उपस्थित हुआ। उस चित्र को देखकर रूपसेन मंत्रमुग्ध हो गया और चित्रकार से बोला, "वसन्तमिश्र ! क्या यह युवती सजीव सुन्दरी है या तुम्हारी कल्पनासुन्दरी है !"

"प्रभु ! यह चित्र जिस सुन्दरी का है वह साक्षात् और सजीव है, काल्पनिक नहीं। यह चित्र सुवर्णपुर के जमींदार की इकलौती पुत्री स्वर्णमंजरी का है। मैंने उसे एक बार एक मन्दिर में देखा था। मैं उसके सौन्दर्य से बहुत प्रभावित हुआ और मैंने उसे इस चित्र में अंकित कर दिया।" वसन्तमिश्र ने उत्तर दिया।

वसन्तमिश्र के उत्तर से रूपसेन अत्यन्त प्रभावित हुआ। उसके हृदय में स्वर्णमंजरी से मिलने की कामना जाग उठी। उसने अपने सेवकों को आदेश दिया कि सुवर्णपुर जाकर स्वर्णमंजरी को लेकर आओ। सेवकों ने लौट कर जवाब दिया, "प्रभु ! एक सप्ताह पहले स्वर्णमंजरी का विवाह हो चुका है। वह इस समय अपनी ससुराल में है।"

यह जवाब सुनकर रूपसेन अत्यन्त निराश हुआ। वह अपनी इस हार पर खीज उठा और उसका पारा चढ़ गया। उसने चंद्रवती, संगीताचार्य, कवि, यहां तक कि चित्रकार वसन्तमिश्र को भी कारागार में डाल दिया। रूपसेन का तर्क था कि ये सभी कलाकार उसे व्याकुल बनाने में कारण हुए हैं, इसलिए दंड के
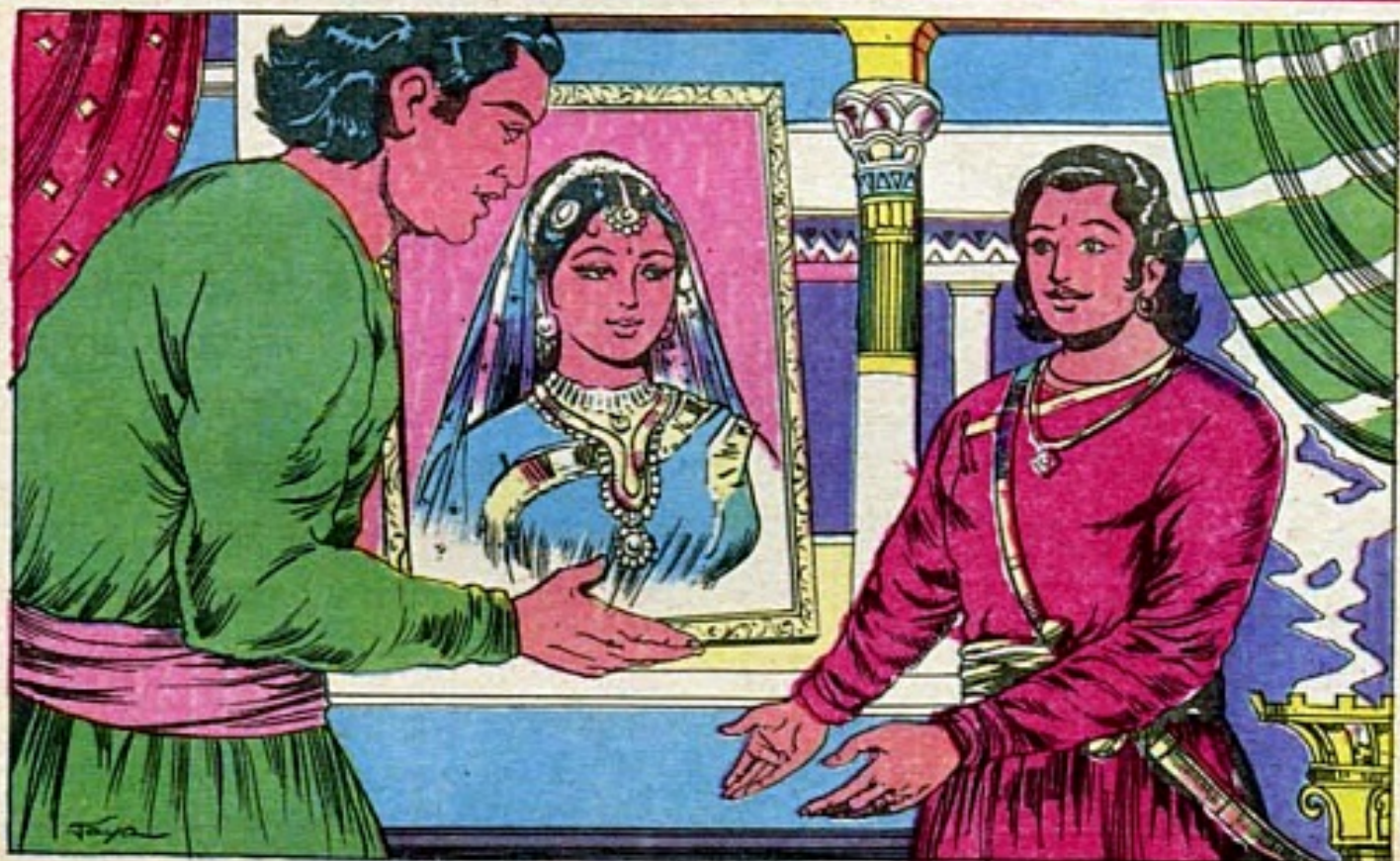
भागी हैं। उसके इस बेतुके तर्क का उत्तर किसी के पास नहीं था ।

एक बरस बीत गया। इस बीच रूपसेन इन सारी बातों को भूल गया। लेकिन उसके क्रोध के शिकार हुए वे निर्दोष लोग कारागार में सड़ते रहे ।

सौगन्ध देश से लगा हुआ जयन्त देश है। उस देश का राजा हर साल बड़ी धूमधाम से वसन्तोत्सव मनाया करता था। रूपसेन को भी उस देश के राजा की तरफ से निमंत्रण मिला। वसन्तोत्सव में भाग लेने के लिए रूपसेन उस देश में गया। अनेक प्रकार के उत्सव हुए। उन्हीं उत्सवों में एक दिन संगीत का आयोजन हुआ। उस समारोह में एक अत्यन्त सुन्दरी युवती ने अपने अद्भुत संगीत, स्वर-लहरी और कोमल मुख-भंगिमाओं के कारण रूपसेन को विशेष रूप से अपनी तरफ आकर्षित किया।

रूपसेन ने उस युवती का परिचय जानने की इच्छा प्रकट की। इस पर जयन्त देश के युवराज ने बताया, "रूपसेन ! यह युवती आप ही के देश की है। इसका नाम स्वर्णमंजरी है। यह सुवर्णपुर के जमींदार की पुत्री है। हमारे देश के एक गायक नवीन के साथ इसका विवाह हुआ, इसलिए अब यह यहीं रहती है। यह केवल गायिका ही नहीं, बल्कि सद्गुणों की राशि भी है ।"

स्वर्णमंजरी का परिचय पाने पर रूपसेन को सारी पिछली घटनाओं का स्मरण हो आया। अब उसकी सारी खीज स्वर्णमंजरी पर आगयी। वह क्रोधावेश से बेचैन हो उठा। पर स्वर्णमंजरी एक परायी विवाहिता स्त्री थी, इसलिए उसका क्रोध उफन कर फिर अपने आप ही शांत हो गया ।

उत्सव समाप्त हो जाने के बाद रूपसेन ने स्वर्णमंजरी से बातचीत करने की इच्छा प्रकट की। अपने पति को साथ लेकर स्वर्णमंजरी रूपसेन से मिली। कुछ देर वे बातचीत करते रहे। उस संक्षिप्त वार्तालाप के बीच रूपसेन के अन्दर आश्चर्यजनक परिवर्तन घटित हुआ। स्वर्णमंजरी की मृदु-मधुर वार्ता, उसके चेहरे की पवित्रता, व्यवहार और संस्कार की स्वच्छता अत्यन्त प्रभावशाली थी और इन सबने स्वर्णमंजरी के सौन्दर्य में चार चांद लगा दिये थे।

उसी दिन रूपसेन अपने राज्य के लिए रवाना होगया । राजधानी में पहुँचते ही उसने पहला काम यह किया कि क़ारागार में पड़े उन चारों कलाकारों को मुक्त कर दिया । फिर उन्हें सभाभवन में सादर बुलाया और उचित पुरस्कारों के साथ उनका सम्मान किया ।

बेताल ने यह कहानी सुना कर विक्रमार्क से पूछा, "राजन् ! रूपसेन के इस विचित्र व्यवहार के बारे में आपका क्या विचार है ? जिस स्त्री की उसने कामना की थी, उसके न प्राप्त होने पर रूपसेन ने वसन्तमिश्र आदि सब कलाविदों को अन्यायपूर्वक कारागार में डाल दिया, पर उस स्त्री को स्वयं देखने और उससे बात करने के बाद उसने सबको कारागार से न केवल मुक्त किया, बल्कि पुरस्कारों से उनका सम्मान भी किया । रूपसेन के अन्दर जो यह परिवर्तन हुआ, उसका कारण उसका मतिभ्रम ही है न ? अगर इस सन्देह का समाधान आपने जानकर भी न किया तो आपका सिर फटकर टुकड़े-टुकड़े हो जायेगा ।"

इस पर विक्रमार्क ने कहा, "रूपसेन के अन्दर उसका पहले का संस्कार अज्ञात रूप से छिपा हुआ था । पर वह संस्कार बादलों में छिपे चंद्रमा की तरह उसके क्रोध की ओट में दबा हुआ था । जब बादल भयानक रूप से घिरते हैं तो जैसे कभी-कभी बिजली की चमक और बादलों के गर्जन के साथ बारिश हो जाती है, वैसा ही कुछ रूपसेन के साथ होता था । उसके क्रोध का पारा चढ़ जाता था और कोई न कोई व्यक्ति उसके क्रोध का शिकार होजाता था । जैसे सूर्य की तेज़ किरणें बादलों को भेदकर उन्हें गायब कर देती हैं, उसी प्रकार स्वर्णमंजरी की स्वच्छता और पवित्रता रूपसेन के अन्दर तक भिद गयी और उसने उसके मन का मैल धोकर उसे पवित्र बना दिया । रूपसेन के अन्दर घटित होनेवाला परिवर्तन 'चित्त-संस्कार' कहलाता है, चित्त-भ्रम नहीं !"

जैसे ही राजा विक्रमार्क ने अपनी बात पूरी की, बेताल शव के साथ अदृश्य होकर पुनः पेड़ पर चढ़ गया । (कल्पित)

उत्तम शिष्य

कोसल की राजधानी के निकट एक जंगल था। उस जंगल में आश्रम बनाकर एक आचार्य रहा करते थे, उनका नाम कमलानन्द था। वे समस्त शास्त्रों के ज्ञाता और अत्यन्त विद्वान पुरुष थे। उनके यहां सम्पन्न परिवारों के बच्चे ही नहीं, बल्कि राजा-महाराजाओं के पुत्र भी विद्या प्राप्त करने के लिए आया करते थे।

आचार्य कमलानन्द की एक विशेषता यह थी कि वे विद्यार्थियों को पढ़ाते समय कभी भी ईश्वर का नाम नहीं लेते थे। अगर कभी कोई शिष्य ईश्वर के प्रति भक्ति को लेकर कोई प्रश्न भी करता, तो वे यही उत्तर दिया करते थे— "यह प्रश्न तुम्हारे भविष्य के जीवन से जुड़ा हुआ नहीं है। तुम्हें अगर अपने जीवनकाल में उन्नति प्राप्त करनी है तो तुम्हारा विवेक, ज्ञान ही तुम्हारे काम आयेगा, समय की सूझ ही तुम्हारी सहायक बनेगी। इसलिए सदा इस बात का ध्यान रखकर विद्याध्यन करो।"

कमलानन्द के शिष्य-समुदाय में दो राजकुमार भी थे। उनमें से एक मणिपुर का राजकुमार चंद्रसेन था और दूसरा नागपुर का राजकुमार सूर्यसेन था।

कुछ बरसों बाद दोनों राजकुमार अपनी शिक्षा पूरी करके अपने-अपने देश लौट गये और कुछ दिनों बाद उन देशों के राजा बने।

एक बार कमलानन्द अपने शिष्यों के राज्य का परिचय पाने के लिए अपने आश्रम से निकल पड़े। उनके साथ उनका मुख्य शिष्य रामदास भी था। सबसे बहले आचार्य मणिपुर पहुंचे, जहां इस समय चंद्रसेन राजा था। राजधानी में सब जगह उन्हें मंदिर ही मंदिर दिखाई दिये। मंदिरों के सामने विशाल शामियाने गड़े थे, जिनके नीचे गरीबों को अन्नदान दिया जारहा था।

राजा चंद्रसेन ने सब प्रकार से आचार्य कमलानन्द का स्वागत-सत्कार किया। आचार्य

विवेकसिंह राउत

चंद्रसेन ने पूछा, "मैंने तुम्हारी राजधानी में अनेक मंदिर देखे। मुझे ऐसा मालूम होता है कि तुम्हारे अन्दर भगवान के प्रति गहरा विश्वास है! मेरा यह विचार सच है न ?"

"ईश्वर के लिए मेरे हृदय में कोई आस्था नहीं है।" चंद्रसेन ने विनीत होकर कहा।

"तब तुम्हारी राजधानी में इतने सारे मंदिर और गोपुर कैसे ?" कमलानन्द ने पूछा।

"गुरुदेव ! मेरी प्रजा में ईश्वर के प्रति बहुत आस्था और भक्ति-भावना है ! उनकी भावना के आदर के लिए मैंने इन मंदिरों का निर्माण करवाया है !"

चंद्रसेन से मिलने के बाद आचार्य कमलानन्द ने नागपुर की तरफ प्रस्थान किया, जहां इस समय सूर्यसेन शासक था। बड़े आश्चर्य की बात थी कि सारे नगर में उन्हें एक भी मंदिर दिखाई नहीं दिया।

कमलानन्द ने कुछ लोगों से पूछा, "क्या तुम लोग ईश्वर में विश्वास नहीं करते ?"

"हम लोग तो ईश्वर में विश्वास करते हैं, लेकिन हमारे राजा ईश्वर में विश्वास नहीं करते हैं।" जनता के लोगों ने जवाब दिया।

मिलने पर राजा सूर्यसेन ने भी अपने आचार्य कमलानन्द का बहुत आदर-सत्कार किया। शिष्य का कुशल-क्षेम पूछकर आचार्य अपने आश्रम को लौट आये। तब आचार्य ने अपने मुख्य शिष्य रामदास से पूछा, "बताओ, तुम्हारे विचार से चंद्रसेन और सूर्यसेन—इन दोनों में कौनसा शिष्य श्रेष्ठ है ?"
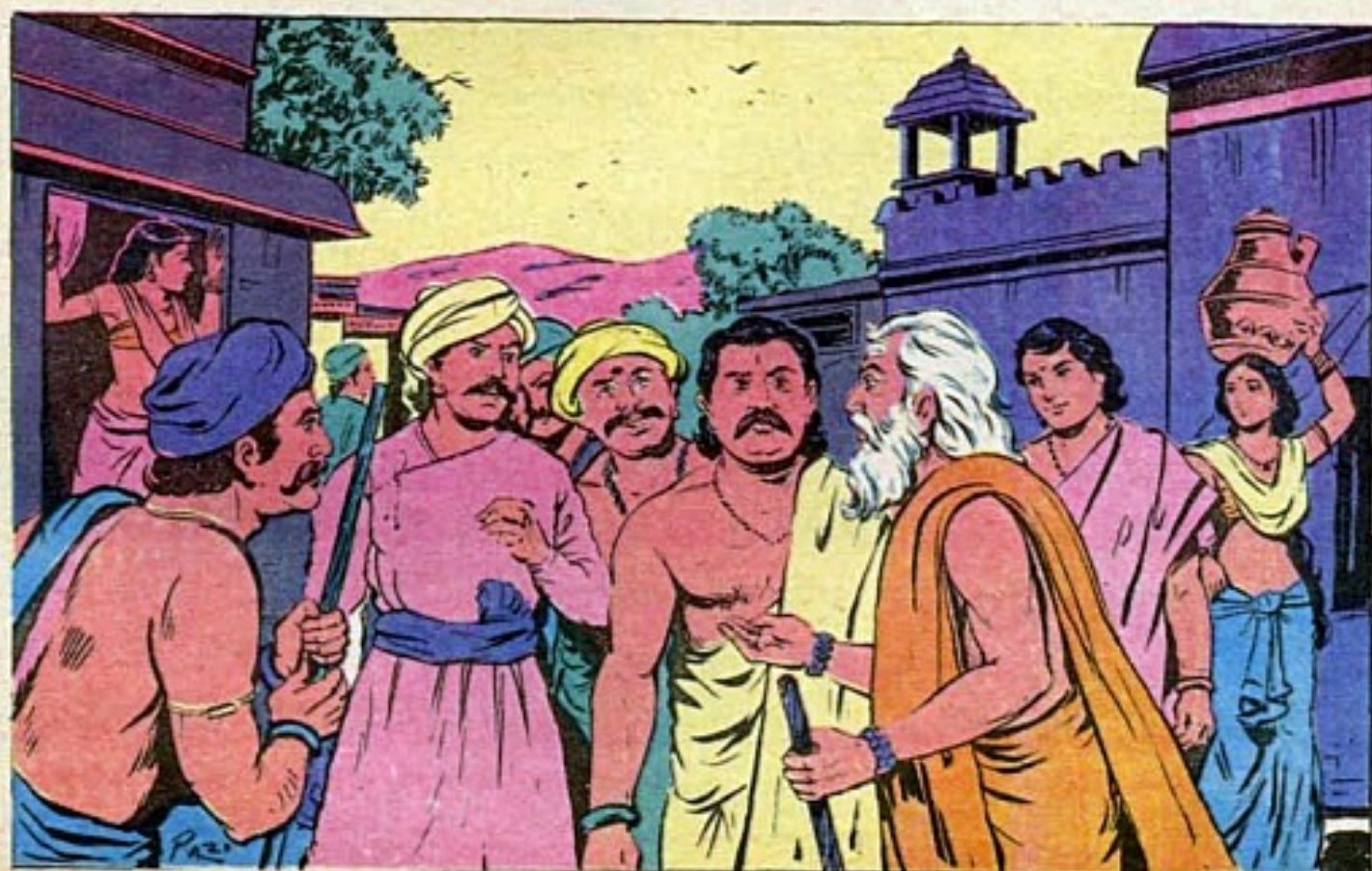
"निस्सन्देह सूर्यसेन ही आपके उत्तम शिष्य हैं ।" रामदास ने उत्तर दिया ।

"कैसे ?" कमलानन्द ने पूछा ।

"चंद्रसेन ने कहा था कि ईश्वर में उनकी आस्था नहीं है । लेकिन उन्होंने अपने इस विचार के विरुद्ध राजधानी में अनेक मंदिर बनवाये हैं, जबकि सूर्यसेन की राजधानी में हमें एक भी मंदिर दिखाई नहीं दिया । इससे पता लगता है कि सूर्यसेन अपनी मान्यता के अनुसार आचरण करते हैं । इसलिए वही आपके उत्तम शिष्य होने चाहिए ।" रामदास ने कहा ।

कमलानन्द कुछ देर मौन रहे, फिर बोले, "मैंने अपने शिष्यों को पढ़ाते समय कभी भी ईश्वर के अस्तित्व के बारे में बात नहीं की थी । जब वे इस सम्बन्ध में कभी कुछ पूछते थे, तब मैं उन्हें अपने ज्ञान, विवेक और समयानुकूल सूझ-बूझ से बरतने की सलाह दिया करता था । पर असली बात यह है कि चंद्रसेन और सूर्यसेन दोनों ने ही मुझे सही ढंग से समझने की कोशिश नहीं की । यही कारण है कि उन दोनों ने ही अपने-अपने देशों में मंदिरों के होने अथवा न होने को एक प्रमुख समस्या के रूप में लिया है और इस मामले में दोनों ने ही अलग मार्गों का अनुसरण किया है । सूर्यसेन के मन में ईश्वर के लिए आस्था है । देश का शासक होने के नाते अपनी प्रजा की इच्छा के अनुरूप शासन करना उसका कर्त्तव्य हो जाता है । पर उसने ऐसा न करके अपने अधिकार के बल पर अपने विचारों को जनता पर थोपा है । यह सही निर्णय नहीं है ।"

"और चंद्रसेन के बारे में आपका क्या विचार है ?" रामदास ने पूछा ।

"वह अपनी प्रजा के अभिमत के अनुसार शासन करनेवाला राजा है । प्रजा के विश्वासों को मानकर उसने मंदिर बनवाये हैं और अब अन्नदान करके अपनी जनता का विश्वास प्राप्त कर रहा है । यह उत्तम राजा का लक्षण है । इसलिए वही मेरा उत्तम शिष्य है ।" आचार्य कमलानन्द ने अपना निर्णय सुनाया ।

मंत्री की जिम्मेदारी

कुमारवर्मा का जब राज्याभिषेक हुआ, उस समय आनन्दगिरि राज्य की आर्थिक हालत अत्यन्त ख़राब थी। कुमार के राजगद्दी पर बैठने से पहले उनके पिता को शत्रु राजाओं के साथ अनेक युद्ध करने पड़े थे, जिससे राज्य का खज़ाना पूरी तरह खाली हो चुका था।

राजा कुमारवर्मा ने अपने मंत्री मुकुल शर्मा के साथ सलाह-मशविरा करके यह तय किया कि इस समय जनता पर अधिक से अधिक कर लगाये बिना काम नहीं चलेगा। इस निर्णय के सिलसिले में राजा ने यह घोषणा करनी चाही कि क्यों और किन परिस्थितियों में ये नये कर लगाने पड़े हैं।

इस पर मंत्री मुकुल शर्मा ने समझाया, "महाराज! आप नये कर लगाने की घोषणा स्वयं न करें। कृपया आप यह काम राज्य के अधिकारियों पर छोड़ दें।"

राजा कुमारवर्मा मंत्री की दक्षता से भलीभांति परिचित थे। वे जानते थे कि मंत्री मुकुल शर्मा ऐसी कोई राय न देंगे जो राज्य के हित में न हो, इसलिए उन्होंने मंत्री की सलाह मान ली।

कुछ दिन बीत गये। एक दिन राजा और मंत्री ने सोचा कि शासन के सम्बन्ध में जनता की राय जान लेनी चाहिए। इसी विचार के साथ वे एक रात वेश बदल कर राजधानी में भ्रमण के लिए निकल पड़े और जहां-जहां भी कुछ लोग गुट बना कर खड़े या बैठे थे और बातचीत कर रहे थे, उनकी बात सुनने लगे।

जाड़े का मौसम था। जब वे आगे बढ़े तो उन्होंने देखा कि एक जगह कुछ लोग अलाव के चारों तरफ बैठकर हाथ सेंकते हुए बातचीत कर रहे हैं। उनकी बात सुनने के लिए राजा और मंत्री भी हाथ सेंकने के बहाने उन लोगों की बगल में जा बैठे।

वे लोग नये करों के बारे में ही चर्चा कर रहे थे । उनमें एक आदमी जो काफी बुजुर्ग जान पड़ता था, कह रहा था, "हम लोग जो ये इतने बड़े-बड़े कर चुका रहे हैं, वैसे कर इस राज्य में हमें कभी नहीं चुकाने पड़े । अब तो इन करों की कोई सीमा ही नहीं रही है । राज्य के अधिकारी और कर्मचारी आते हैं, जनता को डरा-धमकाकर कर वसूल करके ले जाते हैं ।" इस तरह वह बूढ़ा जनता की परेशानियों का बखान कर रहा था और सब लोग उसकी हां में हां मिला रहे थे ।

राजा और मंत्री कुछ देर वहां रुक कर फिर चल पड़े ।

रास्ते में मंत्री ने राजा से कहा, "महाराज ! आपने सुना ! ये सारे कर तो आपने लगाये हैं और जनता राज्य के अधिकारियों को दोष दे रही है !"

राजा कुमारवर्मा कुछ सोच रहे थे, फिर कुछ ठहर कर मंत्री से बोले, "चाहे जो भी हो, यह बात साफ़ है कि जनता में शासन के प्रति असन्तोष है । अब यह बताइये कि इस असन्तोष को दूर करने के लिए हमें क्या करना चाहिए ?"

मंत्री ने राजा की बात को स्वीकृति दी और कहा, "महाराज ! अब हमें घबराने की कोई जरूरत नहीं है । हमारा खज़ाना पूरी तरह भर चुका है । कल ही मुझे यह खबर कोशाध्यक्ष ने दी है । बस आप आज्ञा दें, हम तुरन्त नये कर रद्द कर सकते हैं ।"

राजा खुश होकर बोले, "आपने यह बात हमें पहले क्यों नहीं बताई ? आप जल्दी से जल्दी नये कर रद्द करने की सूचना राज्य के अधिकारियों द्वारा जनता तक पहुँचवाने का प्रबन्ध कीजिए !"

राजा की बात सुनकर मंत्री मुकुल शर्मा मुस्कराने लगे और बोले, "महाराज ! नये कर रद्द करने की घोषणा आप स्वयं करेंगे तो ज्यादा उचित होगा !"

राजा ने विस्मयपूर्वक प्रश्नसूचक दृष्टि से मंत्री की ओर देखा ।

"हां महाराज ! 'नये कर किन स्थितियों के कारण लगाये जा रहे हैं' जब आपने स्वयं ऐसी

घोषणा करने का विचार प्रकट किया था, तब मैंने आपको मना किया था। आपका विचार बहुत उत्तम था, पर प्रजा पर इसकी प्रतिक्रिया अच्छी न होती। नये कर लगाने का कारण चाहे जितना भी तर्कसंगत हो, वह जनता के लिए हमेशा ही असन्तोष का कारण हो जाता है।"

"फिर भी अधिकारियों ने जनता से जैसे-तैसे नये कर तो वसूल किये ही हैं।" राजा ने कहा।

"इसीलिए जनता के असन्तोष के शिकार आप नहीं बने, अधिकारी बन गये। अगर नये कर लगाने की घोषणा आपने स्वयं की होती तो राज्याभिषेक के तुरन्त बाद जनता में आपके शासन के प्रति असन्तोष फैल जाता।" मंत्री ने कहा।

"आपकी यह बात तो युक्तिसंगत है, पर नये कर रद्द करने की घोषणा मुझे स्वयं क्यों करनी चाहिए ?"

"नये कर रद्द करने की घोषणा जनता के लिए एक शुभ समाचार जैसी होगी। यह काम आप स्वयं करेंगे तो जनता के बीच आपकी प्रतिष्ठा कई गुना बढ़ जायेगी। इसलिए जब भी राज्यों के शासकों को जनता में असन्तोष पैदा करने वाले निर्णय लेने पड़ते हैं, तब उन्हें अमल में लाने की जिम्मेदारी अधिकारी वर्ग पर छोड़ देनी चाहिए। और जब जनता को प्रसन्न करने वाले निर्णयों कि घोषणा करनी हो तो वह उन्हें स्वयं करनी चाहिए। आपके शासन में किसी प्रकार की उथल-पुथल न हो, ऐसी मंत्रणा देना मंत्री के नाते मेरी जिम्मेदारी है।" मंत्री मुकुल शर्मा ने कहा।

राजा कुमारवर्मा ने अपने मंत्री की प्रतिभा और कुशलता का मन ही मन अभिनन्दन किया और दूसरे दिन जनता के हर्षनादों के बीच नये कर रद्द करने की घोषणा की।

इस प्रकार अत्यन्त बुद्धिशाली मंत्री मुकुल शर्मा की मंत्रणाओं का आदर करते हुए राजा कुमारवर्मा ने अनेक बरसों तक आनन्दगिरि राज्य पर शासन किया।

दुनिया की रीत

ब्रह्मदत्त काशी के राजा थे। उनके शासन काल में बोधिसत्व ने कौशाम्बी नगर में कृष्ण द्वैपायन नाम से जन्म धारण किया। जब वे बड़े हुए तो सारी सम्पत्ति दान कर दी और संन्यास ले लिया। वे पचास वर्ष तक हिमालय में कठोर तपस्या करते रहे। वे केवल कंदमूल फलों का सेवन करते और अपने शरीर को अनेक यातनाएं देकर उसे सुखाते। फिर भी उनकी तपस्या सफल न हुई।

अब कृष्ण द्वैपायन ने तीर्थाटन करने का विचार किया। वे हिमालय की पर्वतमालाओं को छोड़कर घूमते हुए कुछ समय बाद काशी राज्य में आ पहुंचे। वहां एक गाँव में उन्हें अपने बालसखा माण्डव्य मिले। माण्डव्य ने कृष्ण द्वैपायन का अतिथि सत्कार किया और फिर उनसे अपने साथ रहने का अनुरोध किया। माण्डव्य ने उनके लिए एक सुन्दर कुटी बनवाई। कृष्ण द्वैपायन वहां रहने लगे। माण्डव्य उनकी हर आवश्यकता की पूर्ति का बराबर ध्यान रखता था।

एक दिन माण्डव्य का पुत्र यज्ञदत्त गेंद खेल रहा था। उसकी गेंद उछल कर एक सांप की बांबी में जा गिरी।

यज्ञदत्त को मालूम नहीं था कि यह सांप की बांबी है और बांबी के अन्दर सांप निवास कर रहा है। इसलिए उसने गेंद लेने के लिए बेधड़क बांबी में हाथ डाल दिया। सांप ने तुरन्त उसका हाथ डंस लिया। सांप का ज़हर उसके सारे शरीर में फैल गया और यज्ञदत्त बेहोश हो गया।

तभी माण्डव्य और उसकी पत्नी ने बेहोश पड़े अपने पुत्र को देखा। अपने पुत्र की ऐसी दशा देखकर माता पिता दोनों ही विचलित हो गये। माण्डव्य ने फुर्ती से अपने पुत्र को हाथों में उठाया और कृष्ण द्वैपायन के पास पहुँच कर उनके चरणों में डाल दिया।

तब माण्डव्य और उनकी पत्नी ने कृष्ण द्वैपायन से विनती की, "महानुभाव ! आप अपने तपोबल का प्रयोग करके हमारे इस एकमात्र पुत्र को जीवित कर हमें पुत्र-भिक्षा दीजिए !"

कृष्ण द्वैपायन की समझ में न आया कि क्या किया जाये। वे नम्र होकर बोले, "आप भ्रम में पड़े हुए हैं। सच ही मेरे भीतर कोई शक्ति नहीं है। मैंने कई बरसों तक तपस्या ज़रूर की, पर वह सफल न हुई। मुझे तो औषधियों का ज्ञान तक नहीं है। ऐसी हालत में मैं आप लोगों की क्या मदद कर सकता हूँ ? आपके पुत्र को कैसे जीवित कर सकता हूँ ?"
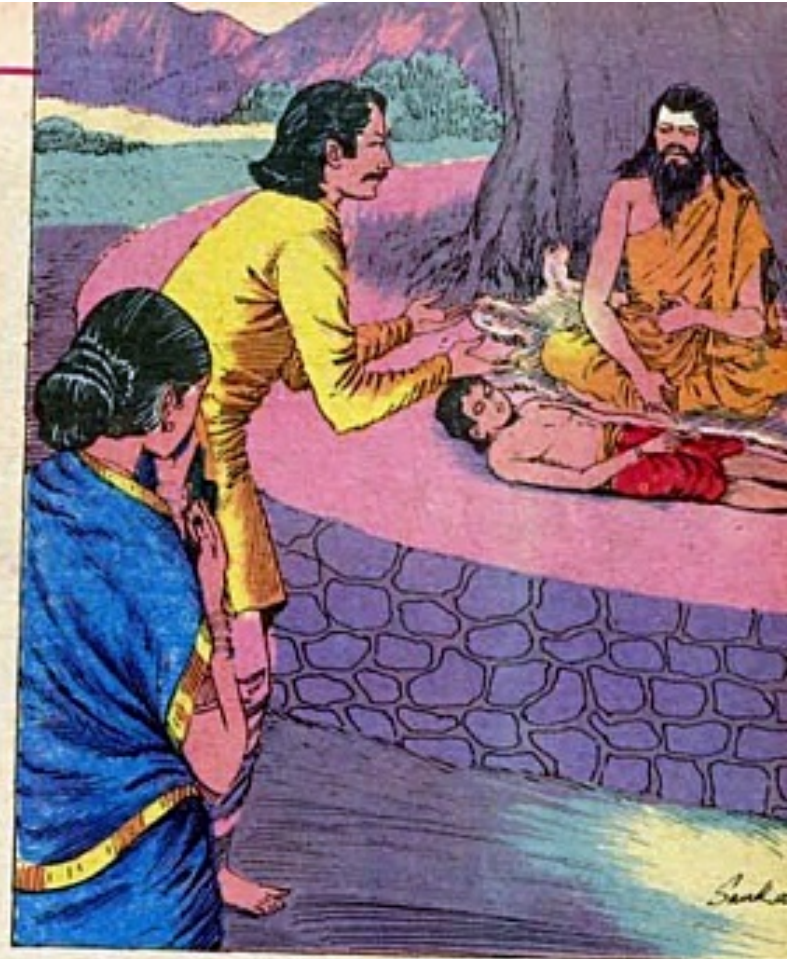
इस पर माण्डव्य ने कहा, "भले ही आपकी तपस्या सफल न हुई हो, लेकिन आपने जो इतने दीर्घकाल तक तपस्या की है, उसका कुछ न कुछ फल तो अवश्य होगा। आप सत्य की शपथ लीजिए, मेरा पुत्र अवश्य जीवित हो जायेगा।"

कृष्ण द्वैपायन माण्डव्य के अनुरोध का तिरस्कार नहीं कर पाये। उसकी बात मानकर उन्होंने यह श्लोक पढ़कर सत्य की शपथ लीः

"सत्ताहं एवाहं प्रसन्नचित्तो
पुंअत्थिको आचरिं ब्रह्मचरियं
आधापरं यं चरितं ममयिदं
वस्यांनि पंज्ञास समाधिकानि
अकामको वाहि अहं चरामि,
एतेन सच्चेन सुवत्थि होतु,
हतं, विसं, जीवतु यंज्ञदत्तो।"

अर्थात्— "मैंने पुण्य की कामना करके एक सप्ताह तक निर्मल चित्त के साथ ब्रह्मचर्य का पालन किया है। इसके बाद मैंने पचास वर्ष तक जो तपस्या की, वह तपस्या पवित्र हृदय से प्रेरित होकर नहीं की गई। मुझसे की गई इस सत्य की शपथ के परिणाम स्वरूप हित हो और इस बालक के शरीर से विष निकल जाये और यज्ञदत्त पूर्णरूप से जीवित हो जाये।"

इस श्लोक के समाप्त होते ही यज्ञदत्त के वक्ष से थोड़ा सा विष निकला और पृथ्वी के भीतर समा गया। यज्ञदत्त ने आंखें खोलकर एक बार अपने माता-पिता की तरफ देखा और

वह 'मां' कह कर कराह उठा । यज्ञदत्त करवट लेकर फिर बेहोश हो गया ।

यह देखकर कृष्ण द्वैयायन ने माण्डव्य से कहा, "मित्र ! तुमने देख लिया न ! पूरी तरह विष निकालना मुझसे संभव नहीं हुआ । अब तुम सत्य की शपथ लेकर प्रयत्न करो । शायद उसका कोई फल निकल आये !"

माण्डव्य ने कृष्ण द्वैपायन की बात मानकर इस प्रकार सत्य की शपथ लीः
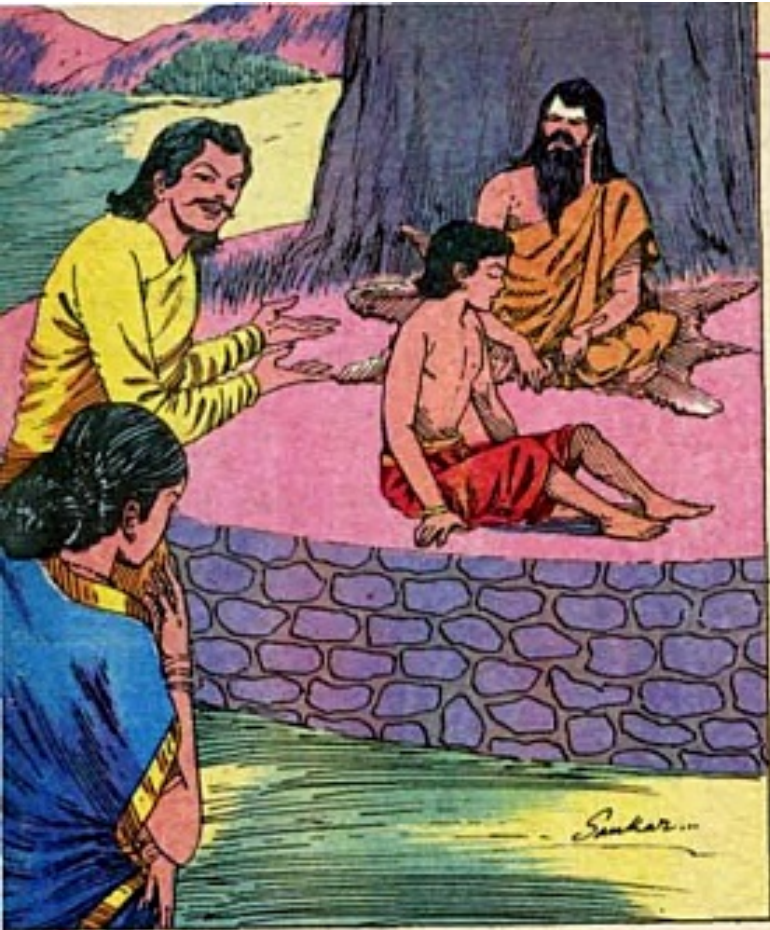
"यस्मा दानं न अभिनंदिं कदाचि
दिरवानाहं अतिथिं वा सकाले
न चापि मे अप्पियं अलेदुं
बहुस्सुता समणा ब्राह्मणाच
अकामको वा हि अहं ददामि,
एतेन सच्चेन सुवत्थि होतु,
हतं विसं, जीवतु यंज्ञदत्तो ।"

अर्थात्— "मैंने अतिथियों का सत्कार अवश्य किया है, पर विशुद्ध कामना से प्रेरित होकर नहीं । ज्ञानी, श्रमण और ब्राह्मण इस बात को समझ नहीं पाये कि मैंने अनिच्छा से उनका अतिथि-सत्कार किया है और दान भी अनिच्छा से ही किये हैं । मुझसे की गई इस सत्य की शपथ के फलस्वरूप विष का प्रभाव उतर जाये और यज्ञदत्त जीवित हो जाये ।"

माण्डव्य के द्वारा इस तरह सत्य की शपथ लेते ही यज्ञदत्त की पीठ में से थोड़ा विष निकला और जमीन पर गिर कर सूख गया । लड़का उठकर बैठ गया, लेकिन खड़ा न हो सका । तब माण्डव्य ने अपनी पत्नी की तरफ मुड़ कर कहा, "तुम भी सत्य की शपथ लो । हमारा पुत्र खड़ा होकर पहले की तरह चल-फिर सकेगा ।"

"मुझे अपनी तरफ से एक सत्य की घोषणा करनी है, पर मैं उसे आपके सामने प्रकट नहीं कर सकती ।" माण्डव्य की पत्नी ने चिंतित स्वर में उत्तर दिया ।

"पगली ! तुम सन्देह क्यों करती हो ? हमें पुत्र से बढ़कर और क्या प्रिय हो सकता है ? इसलिए सत्य की शपथ लो !" यों कहकर माण्डव्य ने अपनी पत्नी को प्रेरित किया ।

तब माण्डव्य की पत्नी ने इस प्रकार शपथ लीः

"असो विसो तात पहूत तेजो
ये तं अदट्टि पदरा इदच्चि,
तस्मिंच मे अप्पियताय अज्ञ
पितरि च ते नत्थि कोचि विसेसो,
एतेन सच्चेन सुवत्थि होतु
हतं विसं, जीवतु यंज्ञदत्तो ।"

अर्थात्— "बेटा आज जिस सांप ने तुम्हें बांबी में डंस लिया, उसे देखने पर मेरे दिल में जैसी घृणा होगी, तुम्हारे पिता को देखने पर भी मेरे मन में वैसी ही घृणा होती है। मेरी दृष्टि में इन दोनों में कोई अन्तर नहीं है। मुझसे की गई इस सत्य की शपथ के फलस्वरूप यज्ञदत्त के शरीर से पूरा विष निकल जाये और वह पूर्ण स्वस्थ होकर जीवित रहे ।"

माण्डव्य की पत्नी के इस तरह सत्य की शपथ लेते ही यज्ञदत्त के शरीर से पूरा विष निकल कर नीचे गिर पड़ा, जिसे ज़मीन ने सोख लिया। इसके बाद बालक उठा और पहले की तरह खेलकूद में मस्त हो गया ।

इस घटना के बाद माण्डव्य ने कृष्ण द्वैपायन की तरफ मुड़ कर पूछा, "महात्मन् ! आपने तपस्वी का सर्वोत्तम जीवन स्वीकार किया, फिर भी अनिच्छा से ही उसे चला रहे हैं। इसका क्या कारण है ?"

"इसके पीछे एक ही कारण है। एक बार जो व्यक्ति संन्यास लेकर घर से निकल पड़ता है, अगर वह फिर गृहस्थ-जीवन में लौटता है तो सब लोग उसकी अवहेलना करते हैं और मूर्ख-पतित बताकर उसकी निंदा करते हैं ।

इसलिए बाद में संन्यास-जीवन के प्रति मेरा आग्रह न रहने पर भी सबकी दृष्टि में आदर-पात्र बना रहने के लिए मैं जबर्दस्ती तपस्वी का जीवन जी रहा हूं। अब तुम बताओ, तुम अतिथियों का इतना स्वागत-सत्कार करते हो, पर अनिच्छा से क्यों करते हो ? इसके पीछे अवश्य कोई कारण होगा ।''

''मेरे पिता और पितामह की दाता व्यक्तियों के रूप में बहुत ख्याति रही है, इसलिए मुझे भी उनके पथ का अनुसरण करना पड़ता है। उनके यश में मैंने कलंक लगाया, यह निंदा न फैले, इसी डर से मैं भी दाता बना हुआ हूं और दान करता हूं, लेकिन यह मेरे अपने हृदय की प्रेरणा नहीं है ।'' माण्डव्य ने उत्तर दिया ।

इसके बाद माण्डव्य ने अपनी पत्नी की तरफ मुड़कर पूछा, ''तुम जब बालिका ही थीं, तभी मेरी पत्नी बनकर मेरे घर आगई थीं । इतने बरसों तक तुमने मेरे साथ गृहस्थी निभाई। मेरे लिए तुम्हारे हृदय में थोड़ा भी प्रेम और अपनत्व नहीं होने के कारण तुम्हें इस जीवन से अवश्य घृणा हुई होगी। फिर भी तुमने इसे सहन किया, इसका क्या कारण है ?''

''हमारे वंश में नारी का अपने पति के साथ गृहस्थी चलाना कर्त्तव्य है, यह मर्यादा है। इसलिए मैंने इस जीवन को सहन कर लिया। यदि मैं आपको छोड़कर किसी और के साथ विवाह कर लेती तो सारा समाज मुझे कुलटा समझ लेता। लेकिन अब अपने पुत्र के हित की कामना से मैंने यह रहस्य प्रकट किया ।'' माण्डव्य की पत्नी ने कहा ।

''तुमने सत्य बताया, इसलिए मैं तुम्हारी निंदा नहीं करूंगा। मैं शपथ लेकर कहता हूं कि आगे मैं तुम्हारे साथ प्रेमपूर्ण व्यवहार करूंगा।'' माण्डव्य ने अपनी पत्नी से कहा।

''तुम दान करना चाहते हो तो पूरे हृदय से करो, किसी दिखावे के लिए या अनिच्छा से मत करो। मैं भी आज से तपस्वी का जीवन संपूर्ण हृदय से बिताऊंगा।'' ऐसा कहकर कृष्ण द्वैपायन ने माण्डव्य से विदा ली और फिर तप करने चले गये ।
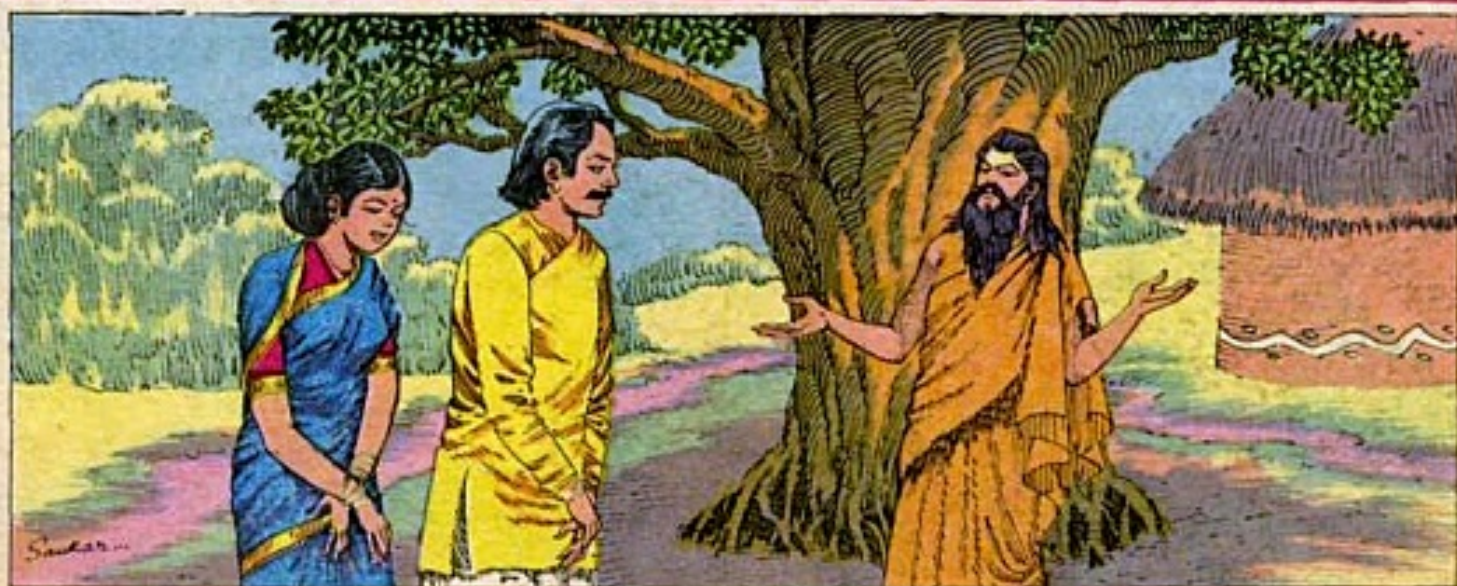
हमारी नदियां

महाकवि कालिदास ने 'देवतात्मा' और 'पर्वतराज' कहकर जिस हिमालय का वर्णन किया है, उसी हिमालय की श्रृंखलाओं से हमारी अधिकांश नदियां जन्म लेकर प्रवाहित हो रही हैं। पुराणों ने नदियों को केवल प्राकृतिक देन ही नहीं माना है, बल्कि उन नदियों के भीतर सजीव आत्माओं के दर्शन किये हैं।

उदाहरण के लिए यमुना को ही लें। हमारे पुराण इस नदी को सूर्य और संध्यादेवी की पुत्री कहते हैं। उस नदी का 'यमुना' नाम इसलिए पड़ गया, क्योंकि यह यमराज की बहन है। ऐसा कहा जाता है कि सृष्टि में हिस्सा बांटने के उत्साह से प्रेरित होकर यमुना पृथ्वी पर नदी का रूप धारण करके आई।
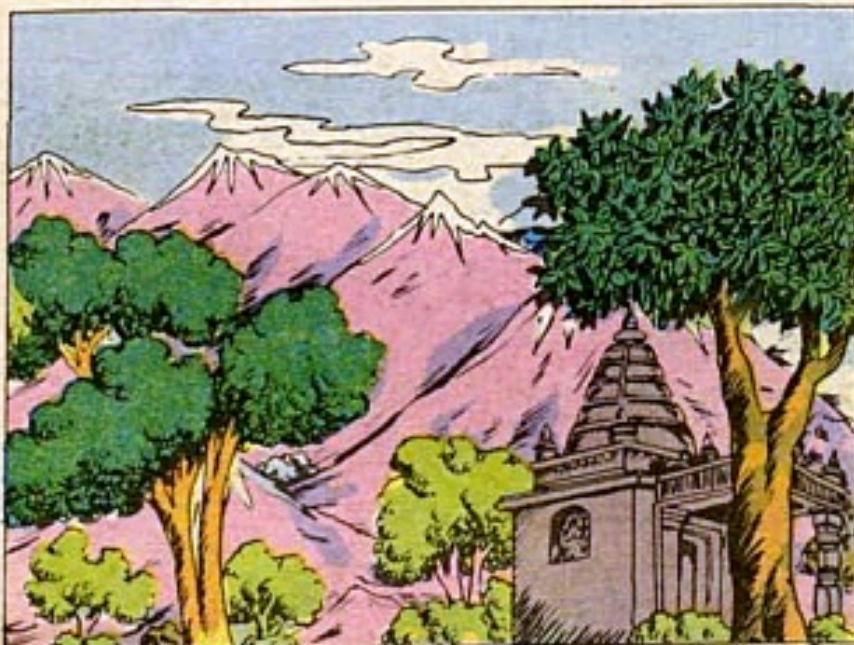
कलिन्द पर्वत के चरणतल में यमुनोत्री के पास हमें यमुना के दर्शन होते हैं। समुद्रतल से दस हज़ार आठ सौ फुट की ऊंचाई पर स्थित यमुनोत्री एक अद्भुत प्रदेश है। इस पवित्र स्थान में यमुना नदी का मन्दिर भी है।

ऐसा कहा जाता है कि प्राचीन काल में यमुना का प्रवाह गोल भंवरों में चक्कर काटता हुआ अत्यन्त वेगशाली था । इसलिए कोई भी प्राणी उसके पास जाने का साहस नहीं कर सकता था । उसके जलप्रपात की ध्वनि एक हज़ार सिंहों के गर्जन की तरह डर पैदा करती थी । जलप्रपात की फुहारें वाष्प के बादलों का रूप धारण कर लेती थीं और दर्शकों के मन में आश्चर्य पैदा करती थीं ।

एक दिन कृष्ण के बड़े भाई बलराम पर्वतों पर भ्रमण करते हुए यमुनोत्री के निकट पहुंचे । यमुना के जलप्रपात को देखकर बलराम ने उसमें स्नान करना चाहा। जलप्रपात के समीप एक विशाल चट्टान पर खड़े होकर उन्होंने नदी को पास आने के लिए पुकारा ।

यमुना ने बलराम की पुकार की कोई परवाह नहीं की । उन्होंने बार-बार उसे पुकारा, लेकिन कोई परिणाम न निकला । इस पर वे उस प्रचण्ड जल-प्रवाह में कूद पड़े । प्रवाह ने उन्हें दूर फेंकने का प्रयत्न किया । यह देख कर बलराम को बड़ा क्रोध आया ।

बलराम यमुना की कगार पर खड़े हो गये और उन्होंने अपना हल यमुना में डालकर उसे खींचना शुरू किया। वे यमुना को खींचते चले गये और उसके प्रवाह को अपनी इच्छानुसार पहाड़ों, घाटियों और मैदानों के टेढ़े मेढ़े रास्तों से ले गये। यमुना को बलराम के हल की रेखा का अनुसरण करना पड़ा।

आख़िर, यमुना की आत्मा ने नारी का रूप धारण किया और उग्र बने बलराम से प्रार्थना की कि वे उसे मुक्त कर दें। बलराम शांत होगये और यमुना को मुक्त कर दिया। इस अनुभव के बाद यमुना मंद गति के साथ बहने लगी।

इसके बाद यमुना नदी पुराण-प्रसिद्ध हस्तिनापुर और इंद्रप्रस्थ नगरों से होकर बहने लगी। कालक्रम में खोगये उन दो नगरों के सीमा क्षेत्रों में ही आज की दिल्ली का निर्माण हुआ है। इतिहास-प्रसिद्ध लाल किले के समीप यमुना नदी प्रवाहित हो रही है।
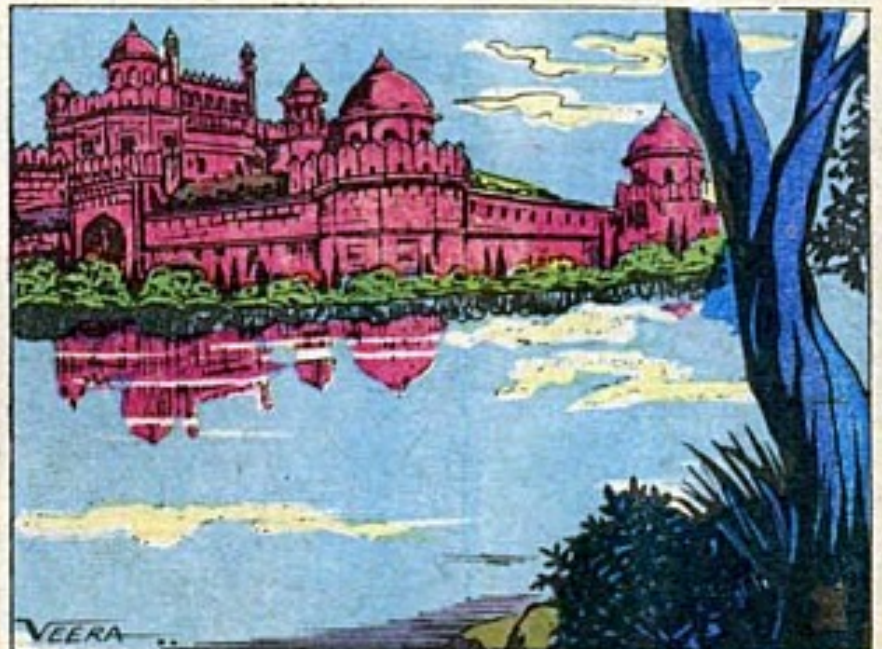
यमुना नदी प्राचीन नगरी मथुरा से सट कर भी बहती है। मथुरा नगरी के दुष्ट राजा कंस के कारागार में श्रीकृष्ण का जन्म हुआ था। जब पिता वसुदेव नवजात शिशु कृष्ण को मथुरा से गोकुल ले जा रहे थे, तब यमुना पार करते समय सर्पराज वासुकि ने उन्हें वर्षाजल से भींगने से बचाने के लिए अपने फण को उनके ऊपर छत्र की तरह तान दिया था।

यमुना-तट पर स्थित वृन्दावन में ही कृष्ण ने अपनी बांसुरी की मोहक तान से पशु-पक्षी तथा गोप-गोपिकाओं को मोहित कर लिया था। कृष्ण की बाल लीलाओं के साथ यमुना का अत्यन्त निकट का नाता है।
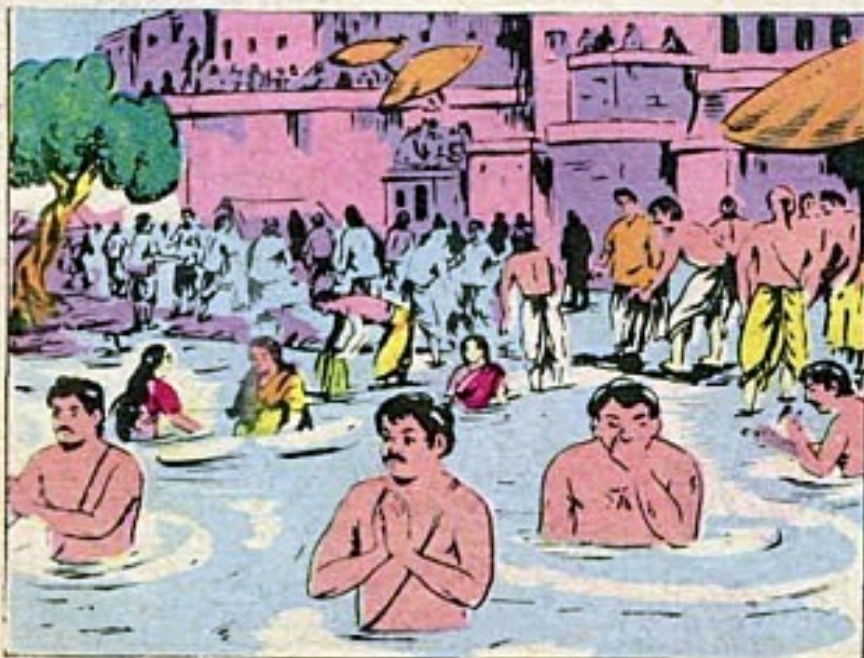
गंगा-यमुना के संगम पर स्थित प्रयाग के पास ही सरस्वती नदी की अन्तर्वाहिनी जलधारा गंगा नदी में मिलती है। भक्तों का विश्वास है कि त्रिवेणी संगम बने प्रयाग में स्नान करने से महान पुण्य की प्राप्ति होती है।

जब आंखें खुलीं

राजा मार्तण्ड के यहां सुबुद्धि नाम का एक मंत्री था, जो अपने नाम के अनुरूप सचमुच ही सुबुद्धि था। राजा के दरबार में और राजमहल में अनेक गुलाम थे, राजा उनसे जानवरों की तरह काम लेते थे।

एक दिन मंत्री सुबुद्धि ने राजा से निवेदन किया, "महाराज ! इन गुलामों को भी अन्य मनुष्यों की तरह जीने का मौका मिलना चाहिए।"

राजा ने जवाब दिया, "जैसे राजाओं के वारिस राजा होते हैं, वैसे ही गुलामों के वारिस गुलाम होते हैं।"

कुछ दिन बीत गये। एक दिन मंत्री सुबुद्धि ने राजा से कहा, "महाराज ! आज का दिन अपने पुरखों के स्मरण करने का दिन है। चलिए, हम उनका स्मरण कर आयें।" और मंत्री राजा को साथ लेकर श्मशान में पहुंचा।

दो दिन पहले ही बारिश होने के कारण श्मशान में हड्डियां जहां-तहां बिखरी पड़ी थीं। मंत्री ने कुछ हड्डियां चुनीं और उनका ढेर बनाकर राजा से बोला, "महाराज ! मैं नहीं जानता कि इनमें आपके पुरखों की हड्डियां कौनसी हैं और उनके गुलामों की हड्डियां कौनसी हैं ? इनको पहचानने का कार्य आप कर दें तो बाकी कार्यक्रम मैं देख लूंगा !"

मंत्री की बात सुनकर राजा की आंखें खुल गईं। सीख पाकर राजा ने उसी दिन सब गुलामों को मुक्त कर दिया और उनके लिए भी अन्य मनुष्यों की तरह स्वतंत्र जीवन बिताने का प्रबन्ध किया।

यह दाढ़ी मेरी है

एक गाँव में दो दोस्त रहते थे। दोनों ने व्यापार करके खूब धन कमाया था। पर उनमें से एक अत्यन्त फिजूलखर्च था और दूसरा लालची था। पहले आदमी का सिर मुंडा हुआ था और दूसरे ने अपनी दाढ़ी बढ़ा रखी थी।

एक दिन दोनों मित्र बैठे हुए गपशप कर रहे थे, कि पहले वाले ने कहा, "दोस्त! मैंने आज तक तुमसे एक बात नहीं बताई। वह यह कि तुम्हारी दाढ़ी को देखने पर बड़ा मज़ा आता है। आज तक मैंने अनेक दाढ़ियां देखीं, पर तुम्हारी जैसी दाढ़ी कभी नहीं देखी। यकीन करो, ऐसी दाढ़ी देश भर में कहीं नहीं है।"

सुनकर दूसरा वाला फूला न समाया। बोला, "हां, दोस्त! सब लोग यही कहते हैं। इतना ही नहीं, कई लोगों ने तो मेरी दाढ़ी पर नज़र गड़ा रखी है। मौका मिलते ही वे मेरी दाढ़ी खरीदने की ताक में हैं।" यह कहकर वह अपनी पांचों उंगलियां दाढ़ी में डालकर उसे उत्साहपूर्वक सहलाने लगा।

यह सुनकर पहला मित्र बोला, "कोई और क्यों खरीद ले? मैं ही ख़रीद लेता हूँ। इसकी कीमत बतला दो।"

लालची मित्र के मन में अचानक कई बातें कौंध गईं। उसने झटपट कह दिया, "तब तो एक हज़ार अशर्फियां दे दो।"

"इसमें क्या है, ले लो। मैंने तो सोचा था कि तुम और भी बड़ी रक़म मांगोगे!" यह कहकर पहले दोस्त ने अपनी जेब से कुछ अशार्फियां निकाल कर उसे पेशगी के रूप में दे दीं।

इसे देख दूसरा दोस्त चौंक पड़ा। पहले वाले ने अपनी शर्त रखते हुए कहा, "अच्छी

२५ वर्ष पहले 'चन्दामामा' में प्रकाशित कहानी

बात है, दोस्त ! आज से यह दाढ़ी मेरी है। पर मेरी एक शर्त है, जब तक तुम्हारी पूरी रकम चुका कर यह दाढ़ी मैं नहीं ले लूंगा, तब तक इसकी रक्षा की जिम्मेदारी तुम्हारी है।...मेरी इस दाढ़ी में तुम्हें मेरी इच्छानुसार तेल लगाना होगा। मेरे कहे मुताबिक इसकी काट-छांट करनी होगी।"

'इसमें कौनसी बड़ी बात है ?' ऐसा सोचकर दूसरे ने पहले की सब बातें मान लीं। पहलेवाले ने फिर एक बार चेतावनी दी—"एक बात और ! आज से कोई इस दाढ़ी को देखकर इसकी तारीफ़ करे तो कह देना, 'महाशय ! यह दाढ़ी मेरी नहीं है। अमुक आदमी की है। उसने इसका दाम देकर इसे खरीद लिया है। मैं उसी के वास्ते इसे सजाता-संवारता हूं'— समझे !"

दूसरे ने यह बात भी मान ली।

अगले दिन से, पहला आदमी वक्त-बेवक्त दूसरे के यहां आने जाने लगा। पहला उससे पूछता, "दोस्त ! क्या बात है, कैसे आना हुआ ?" तो वह यही जवाब देता, "कोई ख़ास बात नहीं है। मैं सिर्फ़ अपनी दाढ़ी देखने आया था।"

कभी किसी दिन वह पहला दोस्त गुस्से में भर कर दूसरे के यहां पहुंच जाता और डांट कर कहता, "दोस्त ! यह क्या ? तुम तो मेरी दाढ़ी को बरबाद कर रहे हो ! पहले मेरी दाढ़ी चम

चम किया करती थी। अब तुम सस्ते किस्म का नारियल का तेल लगा कर इसे खराब कर रहे हो। संवारते भी अंट संट हो।"

हर रोज़ इस तरह की बातें सुनकर दूसरा वाला तंग आ गया। आख़िर उन दोनों मित्रों के बीच मनमुटाव पैदा हो गया। थक कर दूसरा दोस्त गिड़गिड़ाकर बोला, "दोस्त ! तुम्हारा बड़ा पुण्य होगा। मेरा दिमाग घास चरने गया था। धन के लालच में पड़कर मैंने आगा-पीछा सोचे बिना तुम्हारी शर्त मान ली। तुम मेरी दाढ़ी मुझे वापस कर दो, अपना धन ले लो !"

पर पहला दूसरे की बात मानने को तैयार नहीं हुआ। तब दूसरा एक कदम और आगे

बढ़ा और बोला, "तब तो जो रकम तुमने पेशगी दी है, उससे दुगुनी ले लो।" इस पर भी पहला चुप साधे रहा। दूसरे ने सोचा कि किसी भी तरह इससे पिंड छुड़ाना चाहिए। इस ख्याल से उसने कहा, "चलो, मैं तुम्हें चार हज़ार अशर्फियां दे दूंगा।" इस पर पहले का लालच और बढ़ गया। वह खामोश खड़ा तमाशा देखता रहा।

दूसरे को कुछ नहीं सूझा। कुछ दिन और बीत गये। एक दिन रात के समय पहला दोस्त दूसरे के घर पहुंचा। दूसरा गहरी नींद सो रहा था। पहले ने बिना किसी संकोच के उद्दण्डतापूर्वक दूसरे की दाढ़ी पकड़ कर खींच ली। आश्चर्य की बात, दाढ़ी दूसरे के हाथ में आगई।

फिर क्या था, पहला वाला झट उठ खड़ा हुआ। वह चिल्लाता हुआ, हो-हल्ला करता करता हुआ न्यायाधीश के पास पहुंचा और इस बात की शिकायत की।

न्यायाधीश बड़ा ही समझदार आदमी था। उसने दोनों दोस्तों के दिल की बात ताड़ली। इसके बाद उसने उन दोनों से सारी घटना की तहकीक़ात की।

आखिर में यह साबित होगया कि पहला वाला दोस्त इस विश्वास के बल पर अपने दोस्त को सताने लगा कि 'क्योंकि यह दाढ़ी मैंने ख़रीद ली है, इसलिए इस पर पूरा हक़ मेरा है'— और दूसरे ने उसकी यातनाओं से तंग आकर वह दाढ़ी मुंड़ा डाली और नकली दाढ़ी लगाली।

न्यायाधीश ने अपना फैंसला सुनायाः

पहला दोस्त जान-बूझकर आधी रात दूसरे के घर पहुंचा और उसने जबर्दस्ती उसकी दाढ़ी को खींचा। अब अपनी दाढ़ी को वह ले जाये और दाढ़ी का जो मूल्य बकाया है, वह तुरन्त चुका दे।

क्रोधी पति

किसी गाँव में बलभद्र नाम का एक किसान रहता था। वह बहुत मेहनती था, लेकिन साथ ही तुनकमिजाज़ भी था। क्रोध आने पर वह बेकाबू हो जाता था और उसे किसी बात का होश नहीं रहता था। इसके विपरीत उसकी पत्नी शांता बड़ी सहनशील नारी थी।

लेकिन सहनशीलता की भी हद होती है। एक दिन उससे जब सहा नहीं गया तो वह बिगड़ उठी और बोली, "मुझे क्यों यों तंग करते हो? मैंने तुम्हारे लिए किस बात की कमी की। अगर तुम मुझसे सन्तुष्ट नहीं हो तो मुझे इस घर से भेज दो। यहां मैं जितनी मेहनत करती हूँ, अगर वैसी चाकरी कहीं भी करूंगी तो मेरे दिन मज़े में कट जायेंगे।"

पत्नी की बातें सुनकर बलभद्र के क्रोध का पारा चढ़ गया। तड़क कर बोला, "अगर ऐसा है तो तुरन्त मेरे घर से निकल जाओ और मज़े से जिओ!"

पति के मुंह से ऐसे शब्द सुनकर शांता की आंखों में आंसू छलछला आये। वह उसी समय घर छोड़कर निकल पड़ी।

सारा दिन बलभद्र गुस्से से भरा रहा। शाम को उसका क्रोध जब थोड़ा शांत हुआ तो उसे कुछ चिन्ता हुई। फिर भी उसने सोचा कि उसकी पत्नी अड़ोस-पड़ोस में समय बिताकर रात तक घर लौट आयेगी। पर जब वह नहीं लौटी तो उसके दिल की घबराहट बढ़ने लगी।

शांता बचपन में ही अपने माता-पिता को खो बैठी थी। वह अपने मामा के घर पली और बड़ी हुई थी। वहां पर उसे खूब सताया जाता था। फिर उसकी शादी होगयी। तबसे वे लोग शांता को देखने के लिए एक बार भी नहीं आये थे और न उन्होंने शांता को बुलाया ही था।

शांता जब दूसरे दिन भी घर नहीं लौटी, तो बलभद्र उसकी खोज में चल पड़ा। पहले उसने सारे गांव में उसकी खोज की, पर वह कहीं न

गोपाल अवस्थी

बढ़ा और बोला, "तब तो जो रकम तुमने पेशगी दी है, उससे दुगुनी ले लो।" इस पर भी पहला चुप साधे रहा। दूसरे ने सोचा कि किसी भी तरह इससे पिंड छुड़ाना चाहिए। इस ख्याल से उसने कहा, "चलो, मैं तुम्हें चार हज़ार अशर्फियां दे दूंगा।" इस पर पहले का लालच और बढ़ गया। वह खामोश खड़ा तमाशा देखता रहा।

दूसरे को कुछ नहीं सूझा। कुछ दिन और बीत गये। एक दिन रात के समय पहला दोस्त दूसरे के घर पहुंचा। दूसरा गहरी नींद सो रहा था। पहले ने बिना किसी संकोच के उद्दण्डतापूर्वक दूसरे की दाढ़ी पकड़ कर खींच ली। आश्चर्य की बात, दाढ़ी दूसरे के हाथ में आगई।

फिर क्या था, पहला वाला झट उठ खड़ा हुआ। वह चिल्लाता हुआ, हो-हल्ला करता करता हुआ न्यायाधीश के पास पहुंचा और इस बात की शिकायत की।

न्यायाधीश बड़ा ही समझदार आदमी था। उसने दोनों दोस्तों के दिल की बात ताड़ली। इसके बाद उसने उन दोनों से सारी घटना की तहकीक़ात की।

आखिर में यह साबित होगया कि पहला वाला दोस्त इस विश्वास के बल पर अपने दोस्त को सताने लगा कि 'क्योंकि यह दाढ़ी मैंने ख़रीद ली है, इसलिए इस पर पूरा हक़ मेरा है'— और दूसरे ने उसकी यातनाओं से तंग आकर वह दाढ़ी मुंड़ा डाली और नकली दाढ़ी लगाली।

न्यायाधीश ने अपना फ़ैसला सुनायाः

पहला दोस्त जान-बूझकर आधी रात दूसरे के घर पहुंचा और उसने जबर्दस्ती उसकी दाढ़ी को खींचा। अब अपनी दाढ़ी को वह ले जाये और दाढ़ी का जो मूल्य बकाया है, वह तुरन्त चुका दे।

क्रोधी पति

किसी गाँव में बलभद्र नाम का एक किसान रहता था। वह बहुत मेहनती था, लेकिन साथ ही तुनकमिजाज़ भी था। क्रोध आने पर वह बेकाबू हो जाता था और उसे किसी बात का होश नहीं रहता था। इसके विपरीत उसकी पत्नी शांता बड़ी सहनशील नारी थी।

लेकिन सहनशीलता की भी हद होती है। एक दिन उससे जब सहा नहीं गया तो वह बिगड़ उठी और बोली, "मुझे क्यों यों तंग करते हो? मैंने तुम्हारे लिए किस बात की कमी की। अगर तुम मुझसे सन्तुष्ट नहीं हो तो मुझे इस घर से भेज दो। यहां मैं जितनी मेहनत करती हूँ, अगर वैसी चाकरी कहीं भी करूंगी तो मेरे दिन मज़े में कट जायेंगे।"

पत्नी की बातें सुनकर बलभद्र के क्रोध का पारा चढ़ गया। तड़क कर बोला, "अगर ऐसा है तो तुरन्त मेरे घर से निकल जाओ और मज़े से जिओ!"

पति के मुंह से ऐसे शब्द सुनकर शांता की आंखों में आंसू छलछला आये। वह उसी समय घर छोड़कर निकल पड़ी।

सारा दिन बलभद्र गुस्से से भरा रहा। शाम को उसका क्रोध जब थोड़ा शांत हुआ तो उसे कुछ चिन्ता हुई। फिर भी उसने सोचा कि उसकी पत्नी अड़ोस-पड़ोस में समय बिताकर रात तक घर लौट आयेगी। पर जब वह नहीं लौटी तो उसके दिल की घबराहट बढ़ने लगी।

शांता बचपन में ही अपने माता-पिता को खो बैठी थी। वह अपने मामा के घर पली और बड़ी हुई थी। वहां पर उसे खूब सताया जाता था। फिर उसकी शादी होगयी। तबसे वे लोग शांता को देखने के लिए एक बार भी नहीं आये थे और न उन्होंने शांता को बुलाया ही था।

शांता जब दूसरे दिन भी घर नहीं लौटी, तो बलभद्र उसकी खोज में चल पड़ा। पहले उसने सारे गांव में उसकी खोज की, पर वह कहीं न

गोपाल अवस्थी

मिली। इसके बाद वह शांता के मामा के यहां उनके गांव पहुंचा। शांता वहां पर भी नहीं थी। शांता के मामा ने बलभद्र को बताया कि अगर शांता उसके घर आई तो वह उसे बलभद्र के घर पहुंचा देगा।

वैसे बलभद्र स्वभाव से क्रोधी ज़रूर था, पर वह शांता को दिल से प्यार करता था। उसने मन में ठान लिया कि जब तक ढूंढ़भाल कर शांता को घर नहीं लौटा लायेगा, तब तक वह भी घर नहीं लौटेगा। पर उसकी समझ में ही नहीं आ रहा था कि शांता को वह कहां जाकर ढूंढ़े! आखिर में उसने सोचा कि अपने गांव लौटकर एक बार फिर से हर घर में पूछताछ कर लेना ठीक होगा।

बलभद्र ने अपने गांव में क़दम रखा ही था कि उसे रघुपति नाम का एक किसान अपनी बैलगाड़ी में जाता हुआ मिला। बलभद्र को देखकर वह बोला, "भैया! तुम्हारी औरत मेरी गाड़ी पर सवार होकर रामापुर चली गई है। मैं उसे छोड़कर आ रहा हूँ।"

रामापुर बलभद्र के गांव से काफ़ी दूर था, फिर भी वह उसी वक्त उस गांव के लिए चल पड़ा। रामापुर तक जाने के लिए यों सड़क अच्छी थी, पर वह चक्करदार सड़क थी। छोटा रास्ता जंगल के बीच से पड़ता था और ख़तरे से खाली नहीं था, इसलिए सब लोग उस रास्ते से जाने में डरते थे।

बलभद्र जल्दी से जल्दी अपनी पत्नी के पास पहुंचना चाहता था। इस आतुरता के कारण उसने छोटे रास्ते से ही रामापुर जाने का निश्चय किया। कुछ दूर चलने के बाद उसने जंगल में प्रवेश किया। पर वह रास्ता भटक कर एक पहाड़ी इलाके में जा पहुंचा और अपनी थकावट मिटाने के ख्याल से एक गुफा के पास जाकर बैठ गया।

वह पहाड़ी गुफा डाकुओं के एक गिरोह का अड्डा थी। थोड़ी ही देर बाद उस गुफा के पास पांच डाकू आये। डाकुओं के सरदार ने अपनी गुफा के पास बलभद्र को देख कर पूछा, "तुम यहां क्यों बैठे हो?"

"रामापुर जा रहा था, थक गया तो अपनी थकावट मिटाने के लिए यहां थोड़ी देर आराम

करने के लिए रुक गया।" बलभद्र ने जवाब दिया।

डाकुओं ने उसकी तरफ शंकित होकर देखा और पूछा, "रामापुर जाने के लिए इधर से रास्ता कहां है ?"

"तब तो सही रास्ता बता दो। मैं उसी रास्ते से चला जाऊंगा।" बलभद्र ने कहा।

इस पर उन में से एक डाकू ने बलभद्र से पूछा, "रामापुर में तुम्हारा क्या काम है ?"

"वहां मेरी पत्नी है।" बलभद्र बोला।

"ओह, ऐसी बात है। मैं रामापुर के सभी लोगों से परिचित हूं। बताओ, तुम्हारे ससुर का क्या नाम है ?" डाकू ने सवाल किया।

"मेरे सास-ससुर जिन्दा नहीं हैं।" बलभद्र ने जवाब दिया।

"तो रामापुर में तुम्हारी पत्नी किसके घर में रहती है ?" डाकू ने अगला सवाल किया।

"यही बात जानने के लिए ही तो मैं रामापुर जा रहा हूं। मैं यह सोचकर घबराहट के मारे मरा जा रहा हूं कि दरअसल मेरी पत्नी वहां पर है भी या नहीं ! ऊपर से तुम ये बेसिर-पैर के सवाल करके मुझे तंग किये जा रहे हो !" बलभद्र खीज कर बोला।

उसका जवाब और उसकी तड़क देखकर डाकू अचरज में आगये। जंगल में उन डाकुओं को देखकर हर कोई थर-थर कांप उठता था। पर यह आदमी बिना किसी परवाह के उलटे उन्हीं को डांट रहा था। उन्होंने सोचा, शायद पास में इसकी मदद के लिए कुछ और लोग भी छिपे बैठे हैं।

डाकु शंकित हो उठे। उन्होंने अपने सन्देह की पुष्टि के लिए बलभद्र से कुछ और सवाल भी पूछे। बलभद्र उनके सवालों का एक भी सही उत्तर दिये बिना उन पर नाराज़ होगया और वहां से उठ कर चल पड़ा।

तब एक डाकू अपने साथियों से बोला, "यह जो कुछ कहता है, सब झूठ है। इसकी हिम्मत देखकर मुझे तो ऐसा लगता है कि यह छद्मवेश में कोई राजभट है। अगर हम ऐसे व्यक्ति को संतुष्ट करके न भेजेंगे तो हमारे लिए ख़तरा पैदा हो जाएगा।"

साथी डाकुओं ने उसकी बात मान ली।

तरह की हानि पहुंचाने की कोशिश की, तो यहीं आसपास या कुछ दूर छिपे तुम्हारे अनुचर तुम्हारी मदद के लिए आ धमकेंगे ।" यह कहकर डाकू अपने साथियों सहित गुफा के अन्दर गये और थोड़ी देर में एक छोटी सी पोटली लाकर बलभद्र के हाथ में थमा दी। उस पोटली के अन्दर धक् धक् चमक रहे कुछ हीरे भी थे ।

बलभद्र हीरे पाकर चुप रहा । डाकुओं ने उसे रामापुर की सीमा पर छोड़ दिया और कहा, "अब तुम यह बात भूल जाना कि तुमने हमें देखा है । अगर फिर कभी तुम धन पाने के लालच से हमारे अड्डे के पास पहुंचे, तो हम तुम्हें दिखाई नहीं देंगे । हम अपना वह अड्डा छोड़कर किसी दूसरी जगह जा रहे हैं ।" बलभद्र को चेतावनी देकर डाकू जंगल में लौट गये ।

बलभद्र ने रामापुर में पूछताछ की तो उसे पता लगा कि इधर हाल ही में जो औरत इस गांव में आई थी, वह गंगानाथ के घर काम पर लगी हुई है। बलभद्र गंगानाथ के घर पहुंचा तो देखा, शांता उस घर में झाड़ू दे रही है। बलभद्र को देखते ही शांता झट पट घर के अन्दर चली गई ।

गंगानाथ भी तभी खेत से लौटा । बलभद्र को देखकर उसने पूछा, "तुम कौन हो और क्या चाहते हो ?"

बलभद्र ने अपना परिचय दिया और शांता के बारे में गंगानाथ से पूछा ।

फिर क्या था, पांचो के पांचो डाकू दौड़ कर उसके पास पहुंचे और बोले, "बड़े भाई, हम लोग अपना पेट भरने के लिए चोरियां करके किसी तरह अपने दिन घसीट रहे हैं । तुम हमारे इस अड्डे के बारे में किसी को कुछ मत बताना। इनाम के रूप में हम तुमको भी कुछ न कुछ अवश्य दे देंगे ।"

बलभद्र ने चकित होकर डाकुओं से पूछा, "तुम लोग मुझे समझते क्या हो ?"

"ऐसी ख़तरनाक जगह पहुंच कर भी अगर तुम हम पर बिगड़ सकते हो, तो निश्चय ही तुम कोई राजभट हो । हमारी गुफा के सामने बैठ जाने के कारण तुम्हें हमारे अड्डे का पता लग गया है । अगर हमने तुम्हें इस समय किसी भी

गंगानाथ ने कहा, "शांता बड़ी भली औरत है। वह सुबह से लेकर शाम तक कोई न कोई काम करती ही रहती है, पल भर भी आराम नहीं करती। ऐसी नौकरानी का मिलना हमारे लिए तो बड़े भाग्य की बात है।"

"मैं उससे थोड़ी देर के लिए बात करना चाहता हूं।" बलभद्र ने कहा।

गंगानाथ ने शांता को पुकारा। बलभद्र ने शांता को अलग ले जाकर पूछा, "क्या हमारे घर में इतना सारा काम था? तुम आराम से वहाँ अपने दिन काटतीं। यहां एक नौकरी की तरह जिन्दगी बसर करना तुम्हें बहुत अच्छा लगता है?"

"यहां मैं इतना काम करती हूं, तो भी मुझे कोई तकलीफ़ महसूस नहीं होती। अगर काम देख कर प्रसन्न होनेवाले और मीठे वचन बोलने वाले हों, तो फिर श्रम श्रम नहीं रह जाता।" शांता ने जवाब दिया।

"तो क्या तुम यह मानती हो कि मैंने कभी तुम्हारी मेहनत की तारीफ़ नहीं की? तुम क्या जानो कि मैं तुमसे कितना प्यार करता हूं!" बलभद्र बोला। इसके बाद शांता को उसने बताया कि कहां-कहां पर उसने उसकी खोज की और छोटे रास्ते से आने के ख्याल से कैसे वह एक भयंकर जंगल से गुज़र कर यहां तक पहुंच गया है।

अपने पति का चेहरा देखकर शांता समझ गई कि बलभद्र झूठ नहीं बोल रहा है और ये सारी बातें सच हैं। इस पर वह थोड़ा नरम होकर बोली, "तब तो तुम यहीं आकर रह जाओ। वहां के खेत बेचकर हम यहीं पर ज़मीन ख़रीद लेंगे। तुम खेतों में काम करना, मैं इस घर का काम करती रहूंगी। इस घर के लोग बड़े ही अच्छे हैं। हम दोनों की कमाई से हमारे दिन आराम से कट जायेंगे!"

"आइन्दा तुम्हें दूसरों के घर में काम करने की कोई ज़रूरत नहीं है। बिना मांगे ही काफ़ी धन मेरे हाथ लग गया है। इस धन से हम शहर में एक मकान ख़रीद कर आराम से रहेंगे।"

बलभद्र की बातों का शांता को विश्वास नहीं हुआ। वह अचरज से बोली, "तुम्हारी सारी बातें सरासर झूठ हैं। तुम मुझे अपने साथ ले

जाने के लिए ये मनगढ़न्त किस्से कह रहे हो।"

"तुम खुद अपनी आंखों से देख लो।" यह कहकर बलभद्र ने पोटली खोलकर हीरे -जवाहरात शांता को दिखा दिये ।

शांता की आंखें चुंधिया गईं । वह चकित होकर बोली, "ये हीरे तुम्हें कहां से मिलें ? अचानक तुम्हें कैसे प्राप्त होगये ?"

"तुम मेरे गुस्से की निंदा करती हो, पर उसी गुस्से की वजह से यह सारा धन हाथ लगा है। मेरे गुस्से के डर से ही हीरे और आभूषणों की यह पोटली मेरे हाथ में रख दी गई है।" इतना कहकर बलभद्र ने अपनी पत्नी को उस गुफा और डाकुओं का सारा किस्सा सुना दिया ।

अपने पति की बातें सुनकर शांता घबरा गई और बोली, "मैं अब तुम्हारे मुंह से कुछ भी नहीं सुनना चाहती। तुम्हारे क्रोध से तंग आकर मैंने घर छोड़ा और यहां परदेस में मज़दूरी शुरू की। सोचा था कि थोड़े दिन बाद तुम्हें समझ आयेगी और तुम अपने क्रोध को काबू कर लोगे। पर तुम तो वहीं के वहीं हो और उल्टे अपने क्रोध को ही अपनी किस्मत खुलने का कारण मान रहे हो। जो ऐसा सोच सकता है, वह कभी अपने क्रोध से मुक्त नहीं हो सकता। ऐसी हालत में मेरे घर लौटने का सवाल ही नहीं उठता है ।"

शांता की बात से बलभद्र दुखी होकर बोला, "शांता, तुम जल्दबाजी में ऐसा निर्णय मत करो। अब तो मैं समझ गया कि मेरा क्रोध किस्मत का ही नहीं, बल्कि बदकिस्मती का भी कारण बन सकता है। सचमुच ही मेरा क्रोध मेरी किस्मत खुलने का कारण नहीं बना, मेरा भी यही विश्वास है। चलो, अब हम अपने घर लौट चलें ।"

शांता ने भांप लिया कि उसके घर छोड़कर चले आने के बाद मिली सीख से उसका पति अब अपने क्रोध पर काबू कर पाने में समर्थ होगया है। वरना इस समय उसे घर लौटता न देख वह आग का गोला बन जाता ।

ऐसा सब सोचकर शांता उसी समय बलभद्र के साथ अपने गांव के लिए चल पड़ी ।

अक्लमन्द नौकर

धर्मपुरी के जमींदार सोमेश्वर की यह आदत थी कि वे हद से ज़्यादा सोते थे। वे रात को सोने के लिए बिस्तर पर जाते तो सुबह को जागना मुश्किल हो जाता। उनकी नींद कभी वक्त पर खुलती ही नहीं थी। इस कारण उनके बहुत से काम समय पर पूरे ही नहीं हो पाते थे। फल यह निकलता था कि उन्हें कई मुसीबतों का सामना करना पड़ता था।

जमींदार सोमेश्वर ने, काम में नुकसान न हो, यह सोचकर निर्णय लिया कि जरूरत के समय उनको जगाने के लिए एक आदमी को तैनात करना अत्यन्त आवश्यक है। यह बात उन्होंने अपने दीवान को बताई। दीवान से यह समाचार अनन्त नाम के एक युवक को मिला। अनन्त ने दीवान से प्रार्थना की कि जमींदार साहब के सामने उसके नाम की सिफारिश कर दें। दीवान अनन्त को जमींदार के पास ले गये।

जमींदार ने अनन्त से कहा, "कल सबेरे-सबेरे चार बजे के करीब मुझे नरसिंहपुर जाना है, मुझे जगा देना।"

सुबह ठीक समय पर अनन्त ने जमींदार को जगा दिया। जमींदार काम पर चले गये।

शाम को जमींदार सोमेश्वर नरसिंहपुर से लौट कर अनन्त को बुलाकर बोले, "मैं सवेरे समय से उठकर चला गया, इसलिए मेरे सारे काम पूरे हो गये।" जमींदार ने अनन्त की तारीफ़ की और बोले, "कल सवेरे मुझे जगन्नाथपुर जाना है। मुझे पांच बजे नींद से जगा देना।"

जमींदार की आज्ञानुसार अनन्त ने उन्हें ठीक पांच बजे जगा दिया।

उस दिन भी शाम को जमींदार जगन्नाथपुर से लौट आये और अनन्त से बोले, "तुम्हें काम पर लगे दो दिन हो गये। यह महीना आज पूरा होता है। कल से नया महीना शुरू हो रहा है। इन दो दिनों के लिए मैं तुम्हें चार सिक्के देता हूं।

बालमुकुन्द गुप्त

अगले महीने से महीना पूरा होने के बाद तुम्हें वेतन के रूप में साठ सिक्के मिला करेंगे।" यह कहकर जमींदार ने अनन्त के हाथ में चार सिक्के रख दिये।

इसके बाद जमींदार सोमेश्वर घर के भीतर चले गये। कपड़े बदल कर ड्योढ़ी के पास आये तो देखा अनन्त किसी और युवक के हाथ में दो सिक्के रख रहा है। जमींदार को कुछ समझ में नहीं आया, उन्होंने अचरज में भरकर पूछा, "यह युवक कौन है? इसे तुम दो सिक्के क्यों दे रहे हो?"

अनन्त डर गया और हकलाते हुए बोला, "हुजूर! वैसे बात कुछ नहीं, यह... यह तो मैं..."

जमींदार को गुस्सा आ गया, गरज कर बोले, "असली बात बताने में तुम संकोच क्यों कर रहे हो? जल्दी बोलो!"

अनन्त ने कम्पित स्वर में उत्तर दिया, "सरकार! पिछले दो दिन आपने एक निश्चित समय पर आपको जगाने की आज्ञा दी थी, उस समय से थोड़ी देर पहले यह आदमी मुझे जगा देता था। इसलिए मैं इसे अपनी नौकरी का आधा हिस्सा ये दो सिक्के दे रहा हूं।"

जवाब सुनकर जमींदार समझ गये कि नींद के मामले में अनन्त भी उन्हीं की तरह है। पर उसकी इस अक्लमंदी पर वे मुस्कराये बिना न रह सके। उन्होंने अनन्त से कहा, "अरे अनन्त! कल से तुम बगीचे में पौधों की सिंचाई का काम करो। तुम्हारी तंख्वाह वही होगी, उसमें कटौती नहीं करूंगा।" फिर वे उस नये युवक की तरफ़ मुड़कर बोले, "पिछले दो दिन से हमें जगाने का जो काम अनन्त ने किया है, क्या वह काम तुम्हें पसन्द है?"

नये युवक ने स्वीकार में सिर हिलाया। फिर जमींदार ने उसके चेहरे को परखते हुए पूछा, "अभी तुमने अनन्त से जो सिक्के लिये, उसमें किसी और का हिस्सा तो नहीं है?"

नये युवक ने जमींदार के चालाकीभरे सवाल को समझ लिया और जवाब दिया, "नहीं सरकार! ये सिक्के पूरे मेरे अपने ही हैं।"
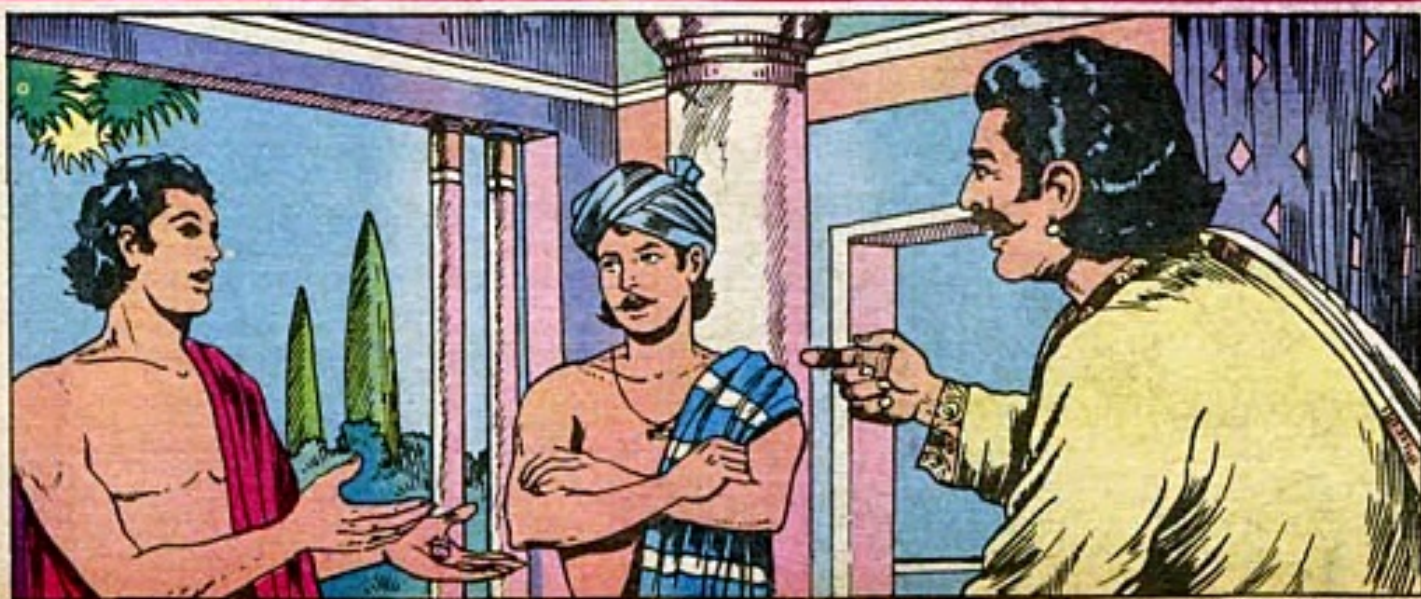
सतीदेवी नन्दीश्वर के साथ दक्ष की यज्ञशाला के निकट पहुंची। उनकी माता प्रसूती तथा भाई ने आगे बढ़कर उनका स्वागत किया और कुशल-क्षेम पूछी। इसके बाद माता प्रसूती सतीदेवी को अलग ले जाकर गुप्त रूप से बोलीं, "बेटी, तुम्हारे पिता अब बूढ़े होगये हैं। वे तुम्हारे पति की निंदा कर रहे हैं। तुम इस बात का कुछ ख़्याल मत करना और धैर्य से काम लेना।" माता ने सतीदेवी को समझाया-बुझाया और उन्हें यज्ञशाला के भीतर ले गयीं।

दक्ष ने जैसे ही अपनी पुत्री को आते हुए देखा, शिव के प्रति उनका क्रोध और उमड़ पड़ा। वे सती को लक्ष्य करके बोले, "तेरा पति श्मशानवासी है, पिशाचों पर शासन करता है। मुण्डमाला पहनता है। अपवित्र है। यज्ञयागों में निमंत्रण पाने का अधिकारी नहीं है। उसकी पत्नी बनकर तू भी अपवित्र बन गई है। मैंने तेरे पति को इस यज्ञ में सम्मिलित होने का निमंत्रण नहीं दिया। मैं उसे यज्ञ का अंश भी नहीं दूंगा। क्या तू इस यज्ञ को अपवित्र करने आयी है?"

अपने पति की निंदा सुनकर सतीदेवी को भयानक रोष हुआ। कुपित होकर उन्होंने पिता दक्ष को शाप दे दिया, "आप यज्ञकर्ता शिव को यज्ञांश दिये बग़ैर यज्ञ कर रहे हैं, साथ ही उनकी निंदा भी कर रहे हैं। अब भी समय है, उन्हें निमंत्रित कर यज्ञ का अंश प्रदान कर उनका सत्कार कीजिए, वरना आपका यज्ञ पूर्ण नहीं होगा और आपका सर्वनाश होगा।"

उस सभा में भृगु आदि अनेक ऋषि

चण्डीश्वर, भैरव आदि गणों को साथ लेकर चल पड़ा। भद्रकाली सिंह पर आरूढ़ हो महाकाली, गौरी, कात्यायनी, चामुण्डा आदि महाशक्तियों को साथ लेकर चल पड़ी।

उधर दक्ष की यज्ञशाला में अनेक उत्पात होने लगे। उलकापात हुआ। रक्त की वर्षा हुई। सांप, बिच्छू, कृमि, कीट आदि से धरती भर गई। यज्ञशाला में उपस्थित कुछ लोग दक्ष की निंदा करने लगे। कुछ लोग प्राण बचाकर वहां से भाग गये। और कुछ लोग यज्ञ का अंश पाने के लोभ से बैठे रहे।

वीरभद्र के गणों ने यज्ञशाला को घेर लिया। वे यज्ञशाला से भागनेवालों को पकड़ कर उन्हें सताने लगे। इधर वीरभद्र ने अपने मुख्य गणों के साथ यज्ञशाला में प्रवेश किया। यज्ञशाला में जो देवता और ऋषिगण बैठे हुए थे, वीरभद्र के गण उनकी पिटाई करने लगे। दक्ष को देखते ही वीरभद्र को अपने जन्मदाता शिव के दुख का स्मरण हो आया। उसने विकराल रूप धारण कर लिया और दक्ष का सिर काट कर यज्ञकुण्ड में होम दिया।

इसके बाद ऋत्विज्, देवता तथा यज्ञशाला में बैठे हुए अन्य लोगों को लक्ष्य कर बोला, "तुम सब ईश्वरद्रोही होकर दक्ष के यज्ञ में भाग लेने आये हो। अब उसका फल भोगो।" यह कहकर वह उन्हें अनेक प्रकार की यातनाएं देने लगा।

तब दक्ष की पत्नी प्रसूती ने आकर वीरभद्र से प्रार्थना की और उसे शांत किया। इसके बाद वीरभद्र भद्रकाली सहित अपने गणों को साथ लेकर कैलास पर्वत लौट गया। सबने भक्तिपूर्वक शिव को प्रणाम किया और सेवा में खड़े होगये।

इस बीच वीरभद्र आदि के द्वारा मार खाये हुए देवता और ऋषिगण एकत्रित होकर ब्रह्मा के पास गये और उनको सारा समाचार सुनाया। ब्रह्मा उन सबको साथ लेकर वैकुंठ पहुंचे और विष्णु से बताया कि वीरभद्र ने दक्ष का सिर काटकर होमकुण्ड में डाल दिया है और दक्ष के यज्ञ का विध्वंस कर दिया है। विष्णु सहित सब अब कैलास पर्वत पर पहुँचे। उस समय शिव ध्यान-समाधि में बैठे हुए थे। वीरभद्र आदि

आश्वासन दिया, "हम सब मिलकर दक्ष का यज्ञ पूरा करायेंगे और लोकों की रक्षा करेंगे।"

ब्रह्मा, विष्णु, शिव के साथ जब सारा देव और ऋषि समाज दक्ष की यज्ञशाला में पहुंचा तो वहां के वातावरण की वीभत्सता देखकर आंतकित हो उठा। दक्ष का सिर तो अग्निकुण्ड में भस्म हो ही चुका था।

शिव ने यह देखकर वीरभद्र को आज्ञा दी, "तुम उत्तर दिशा में जाओ और वहां जो भी प्राणी उत्तर दिशा में सिर करके लेटा हो, उसका सिर काटकर ले आओ।"

वीरभद्र एक भेड़ का सिर काट कर ले आया तथा शिव ने दक्ष के धड़ से उस भेड़ के सिर को जोड़ कर दक्ष को जिलाया। उनके हाथों से विधिपूर्वक यज्ञ संपन्न कराया। यज्ञ होजाने पर दक्ष ने शिव से क्षमा मांगी और प्रार्थना की, "मैंने आपकी महिमा को समझे बिना आपकी निंदा की। आपकी निंदा जिस मुख ने की, उससे मैं वंचित हो गया। आपकी कृपा से मुझे विवेक और यह सिर प्राप्त हुआ। मेरे अपराधों को क्षमा कीजिए और मेरी रक्षा कीजिए।"

शिव ने दक्ष को क्षमा कर ये शुभवचन कहे, "दक्ष, बिना कारण के कोई कार्य संपन्न नहीं होता। आपके अपराध क्षमा हुए। अब आप कोई वर मांगिए।"

इस पर दक्ष, उनकी पत्नी और अन्य परिजनों ने यह इच्छा प्रकट की कि जहां दक्ष के द्वारा यज्ञ संपन्न हुआ है, वह स्थान 'दक्षवाटिका'

गण उन्हें घेर कर खड़े हुए थे।

ब्रह्मा, विष्णु सहित देवताओं और ऋषियों को आया हुआ जान शिव ने अपनी आंखें खोलीं और उन्हें बैठने के लिए कहा।

विष्णु ने शिव से निवेदन किया, "सदाशिव, आप अपने क्रोध और दुःख को त्याग दीजिए। प्रकृति की माया में न फंसिए। आपसे द्वेष करने का फल दक्ष ने भोग लिया है, पर दक्ष के द्वारा प्रारम्भ किया हुआ यज्ञ यदि पूरा न हुआ तो संसार में वर्षा न होगी और फल यह होगा कि सर्वत्र विनाश का तांडव होगा। आप कृपा कर दक्ष को जीवित कीजिए और इस यज्ञ को पूर्ण करवा दीजिए।"

शिव ने उनका अनुरोध मान लिया और

के नाम से प्रसिद्ध हो और वह शिव का निलय 'शिवालय' बने ।

शिव ने उनके आग्रह को मान लिया और भद्रकाली, वीरभद्र आदि से कहा, "इस प्रदेश के दक्षिण-पूर्वी भाग में जो गौतमी नदी है, तुम लोग उसके तट पर अपने गणों के साथ निवास करो ।"

इसके बाद शिव ने भद्रकाली के साथ वीरभद्र को गणाधिपति बनाया और सतीदेवी के शरीर को लेकर ब्रह्मा-विष्णु के साथ कैलास को लौट आये। इसके बाद ब्रह्मा-विष्णु सहित सब देव-ऋषियों को विदा किया और सती के शरीर को पार्श्व में रखकर तपस्या में डूब गये ।

दक्ष की एक पुत्री स्वधा पितृदेवताओं की पत्नी बनी और उसने मेनका, धन्या एवं कलावती इन तीन पुत्रियों को जन्म दिया। वे तीनों कन्याएं अत्यन्त रूपवती थीं और सबकी कामनाओं को पूरन करते हुए सारे लोकों में विचरण किया करती थीं ।

एकबार वे तीनों विष्णु और लक्ष्मी के दर्शन करने गईं । उन्होंने अपने नृत्य एवं संगीत से लक्ष्मी-नारायण को प्रसन्न किया, फिर वे उनके साथ बातचीत करने लगीं। उसी समय ब्रह्मा के मानस-पुत्र सनत, सनन्द आदि भी वहां आ पहुंचे। उन्हें आता देखकर लक्ष्मी-विष्णु सहित सबने उनकी अगवानी की, प्रणाम करके उन्हें आदर दिया, पर मेनका, धन्या और कलावती अपने आसनों पर ही बैठी रहीं ।

उनकी शिष्टाचारहीनता देखकर सनत्कुमार क्रोध में आगये और उन तीनों को शाप दे डाला, "तुम तीनों में अहंकार बढ़ गया है। अब तुम स्वर्ग में रहने योग्य नहीं रहीं। इसलिए तुम तीनों भूलोकवासियों के साथ विवाह करके वहीं रहो ।"

तीनों कुमारिकाओं को अत्यन्त पश्चाताप हुआ । उन्होंने सनत्मुनि से प्रार्थना की, "महात्मन्! हम लोगों ने अज्ञानवश अपराध किया है, उसे क्षमा कर हमें शापमुक्त कीजिए। हम पर कृपा कीजिए ।"

उन पर दया करके मुनि बोले, "अभिमान का प्रायश्चित मानभंग ही है। अब शाप की बात रही, तो इस शाप के द्वारा जगत का कल्याण ही
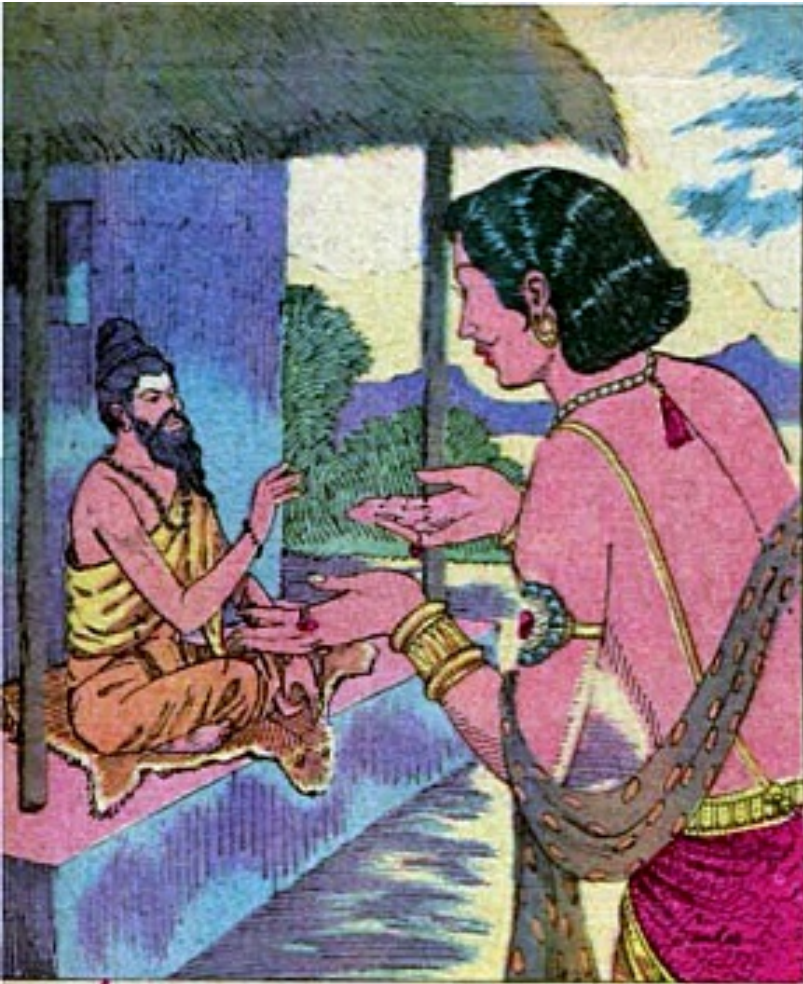
होगा। (यह शाप इस तरह कल्याणकारी सिद्ध हुआ—इन तीनों से उत्पन्न पुत्रियों ने तीन अवतार पुरुषों के साथ विवाह किया। मेनका से उत्पन्न पार्वती ने शिव के साथ, महाराज जनक तथा धन्या की पुत्री बनी सीता ने राम के साथ और वृषभ तथा कलावती से उत्पन्न राधा ने कृष्ण के साथ विवाह किया।)

शाप में निहित कल्याण की बात सुनकर तीनों कुमारिकाएं सन्तुष्ट होगईं और लक्ष्मी-विष्णु से विदा लेकर चली गईं।...

हिमालय-पर्वतों के राजा हिमवान अत्यन्त रूपवान थे। वे अपने पर्वत पर स्थित सभी आश्रमों का भ्रमण करते और वहां के वासी देव-गन्धर्वों का तथा तप करने वाले ऋषियों का कुशल-क्षेम पूछते और उनके परामर्श से काम करते थे। उन सबने मिलकर ही मेनका के साथ हिमवान का विवाह संपन्न कराया।

एक बार हिमवान के पास ब्रह्मा, विष्णु, इंद्र तथा अन्य देवता भी पहुंचे। हिमवान ने अनेक प्रकार से उनका सत्कार किया और उन्हें सुन्दर आसनों पर बैठाकर उनके आगमन का कारण पूछा।

इस पर देवताओं ने उन्हें अपने आगमन का प्रयोजन समझाया, "महाशक्ति ने दक्ष के घर सती नाम से जन्म लिया था। सतीदेवी ने शिव के साथ विवाह किया और दक्षयज्ञ में पति के अपमान से दुखित होकर अपना शरीर त्याग दिया। शिव सती के वियोग में वैरागी बनकर तपस्या कर रहे हैं। उनकी समाधि नहीं टूटती। इधर असुरों का राजा तारकासुर सारे लोकों को संतप्त कर रहा है। जब तक महाशक्ति का पुनः जन्म नहीं होगा और वह शिव से विवाह कर एक पुत्र को जन्म न देगी, तब तक यह तारकासुर लोकों को सताता ही रहेगा। इसलिए, आप और मेनका उस महाशक्ति की उपासना कीजिए और ऐसा वरदान प्राप्त कीजिए, जिससे वह आपकी पुत्री के रूप में जन्म ले।"

हिमवान ने उन्हें ऐसा ही करने का आश्वासन दिया।

इसके बाद ब्रह्मा, विष्णु, इंद्र आदि ने विंध्य

Sankar
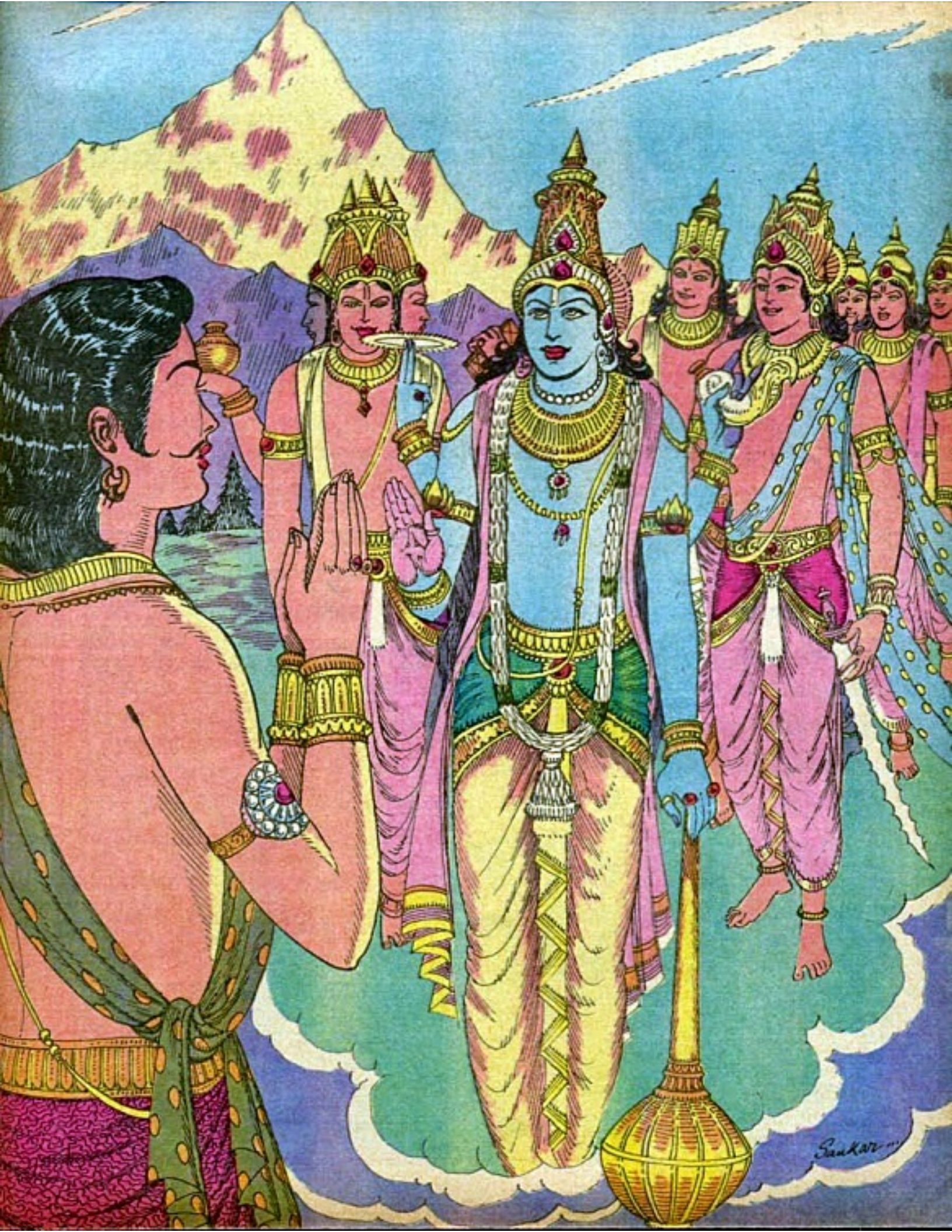
पर्वतों में जाकर वहां निवास करनेवाली महादेवी के प्रति भक्तिपूर्वक स्तोत्रगान किया ।

अपनी ज्योति से समस्त दिशाओं को प्रकाशित करनेवाला किरीट धारण कर देवी प्रकट हुईं । उनके हज़ार हाथ थे और उन्होंने त्रिशूल आदि अनेक आयुध धारण कर रखे थे। उनके नेत्रों में करोड़ों सूर्य-चंद्रों की प्रभा थी। देवी को प्रकट देख कर ब्रह्मा आदि ने उन से प्रार्थना की, "माता, आपने दक्ष की पुत्री सतीदेवी के रूप में जन्म लेकर शिव से विवाह किया और दक्ष के प्रति क्रुद्ध होकर यज्ञ में सती-देह को त्याग दिया। उसके बाद से सती के वियोग के कारण विरक्त होकर शिव समाधि में लीन हैं। इसी कारण समस्त असुरों का राजा तारकासुर विश्रृखल बनकर समस्त लोकों को यातना दे रहा है । माता, आप जन्म धारण कीजिए और पार्वती के रूप में मेनका और हिमवान के घर को पवित्र बनाइए। शिव के साथ विवाह कर आपके जो पुत्र उत्पन्न होगा, वही तारकासुर का वध करेगा और तभी लोकों की रक्षा होगी ।"

महादेवी ने वचन दिया कि वे ब्रह्मा, विष्णु, इंद्र आदि की कामना पूरी करेंगी और उन्हें अभयवचन दे वे अदृश्य हो गईं ।

मेनका और हिमवान ने ब्रह्मा आदि देवों के उपदेश को ध्यान में रखकर तप करने का निश्चय किया । उन्होंने चैत्र शुक्ला प्रथमा के दिन तपस्या आरम्भ की और सत्ताईस सप्ताह तक अत्यन्त भक्तिपूर्वक महाशक्ति की उपासना की। महाशक्ति प्रसन्न होकर उनके सामने प्रकट हुईं और वर मांगने को कहा ।

मेनका और हिमवान ने निवेदन किया, "हे माता, आप के प्रसन्न होने से हमारा उद्धार हो गया है। हमें बल, पराक्रम एवं गुणसम्पन्न सौ पुत्रों को प्रदान करो। हमारी पुत्री के रूप में जन्म धारण करके जगत के कल्याण के लिए शिव के साथ विवाह करो और हमें स्थायी रूप से यज्ञ का भागी बना दो ।"

महाशक्ति ने उनकी कामनाओं को पूर्ण करने का वरदान दिया और अदृश्य होगईं ।

तीतर की गवाही

बगदाद शहर के पास के पहाड़ों में एक डाकू रहता था—जवान और ताक़तवर। वह वायुवेग से दौड़ सकता था और बिजली की गति से तलवार चला सकता था। किसी की भी जान ले लेना उसके लिए मामूली बात थी।

जहां वह रहता था, उसके पास के पहाड़ी रास्ते से अगर कोई गुज़रता तो वह कूदकर अचानक उस पर हमला कर देता और उसकी सारी सम्पत्ति लूट लेता। इतने से ही उसे चैन नहीं था, फिर वह अपनी तलवार उठाता, उसका सिर काटता और पहाड़ों में भाग जाता। ऐसा करने से उसे बड़ा आनन्द आता था, लेकिन उसके मनोरंजन के पीछे बेचारे निरपराधी और निहत्थे बलि के बकरे बन जाते थे। यह क्रम कई वर्षों से बराबर चला आ रहा था।

एक शाम एक बूढ़ा मुसाफिर उस पहाड़ी रास्ते से गुज़र रहा था। वह किसी दूसरे इलाके का था और अपनी सारी जमा-पूंजी लेकर पास के गांव में अपनी बेटी के पास जा रहा था।

डाकू पहाड़ी चट्टानों के पीछे से अचानक उसके सामने कूद पड़ा और बूढ़े का रास्ता रोक तलवार उठा कर बोला, "अरे बूढ़े, अब तो समझ, तेरी मौत ही आगयी है ! ख़बरदार, जो एक क़दम भी आगे बढ़ा !"

डर के मारे बूढ़ा थर-थर कांपने लगा और दीन स्वर में बोला, "अरे जवान बेटे ! इस थैली के अन्दर जो भी धन है, वह मेरी सारी ज़िन्दगी की मेहनत की कमाई है। इसे मैंने पाई-पाई करके जोड़ा है। मेरी औरत मर गई है। मेरी एक इकलौती बेटी है, वह इस शहर के पास के एक गांव में रहती है। मैं तो अब बुड्ढा होगया, बाकी उम्र अपनी बेटी के पास गुज़ारना चाहता हूं। ऐसा करो, तुम इस धन का आधा हिस्सा लेकर आधा मेरे लिए रहने दो !"

बूढ़े की बात सुनकर डाकू विकट रूप से अट्टहास करने लगा। बोला, 'यह तो मेरी रीत

'अरब की रातों' से एक कहानी

नहीं है। मुसाफ़िर के पास जो कुछ भी होता है, वह सब मेरा होता है। उस सारे को लूट लेना मेरा रिवाज़ है।"

बूढेने सोचा कि अब इस डाकू को अपनी हालतका बयान करना और इसके सामने हाथ जोड़ कर गिड़गिड़ाना बहरे के सामने शंख बजाने के बराबर है! फिर क्या था ?

बूढ़ा पीड़ा से कराह उठा और बोला, "अच्छी बात है, मैं असहाय हूं। मेरा सारा धन तुम ले लो और मुझे अपने रास्ते जाने दो।"

डाकू ने सारा धन ले लिया, फिर खिलखिला कर हंस पड़ा। बोला, "मैं तुम्हें ज़िन्दा छोड़ दूं ? यह तो नहीं हो सकता। तुम्हारे प्राण लेकर ही छोड़ूंगा।"

"यह तुम क्या कहते हो बेटा! मैंने तो अपने खून-पसीने की सारी कमाई तुम्हें दे दी। अब तुम मुझे मारना क्यों चाहते हो ? मुझे मारने से तुम्हारा क्या लाभ होगा सिवाय पाप का बोझा अपने सर पर लेने के। इसलिए मुझ पर रहम करके मुझको प्राणों के साथ छोड़ दो!" बूढ़े की आवाज़ में डर के साथ-साथ आश्चर्य भी था

"लूटने के बाद राहगीरों को मार डालना मेरी आदत है।" यह कहकर डाकू ने तलवार उठाई।

बूढ़े के कंपकंपी छूट गई। सहायता के लिए उसने चारों तरफ नज़र दौड़ाई, सुनसान ही सुनसान था कहीं कोई आदमी नज़र नहीं आ रहा था।

उसने घुटने टेक दिये। ईश्वर से प्रार्थना करने के अलावा अब किसका आसरा था! उसने हाथ जोड़कर ईश्वर से प्रार्थना की और ऊपर सिर उठाया। तभी उसे आसमान में एक तीतर उड़ता दिखाई दिया।

बूढ़े ने ऊंची आवाज़ में कहा, "ऐ तीतर! तुम्हीं इस अत्याचार के गवाह हो। मैंने बिना किसी प्रतिवाद के अपना सारा धन इस डाकू को दे दिया, अब मेरे पास कुछ भी शेष नहीं है, फिर भी यह बेरहमी के साथ मुझे मार रहा है।"

बूढ़े की बात अभी पूरी भी नहीं हुई थी कि डाकू ने उसका सिर काट डाला।

...दिन बीतते गये। लूट के माल से डाकू धनवान होता चला गया। अब उसके मन में

यश कमाने का लालच पैदा हुआ। उसने पहाड़ी पर से अपना डेरा उठा लिया और एक नगर में अपना स्थाई निवास बनाकर रहने लगा। उस नगर के सुलतान शतरंज के बड़े शौकीन थे और डाकू शतरंज का कुशल खिलाड़ी था। शतरंज के खेल के कारण दोनों का परिचय हुआ।

परिचय धीरे-धीरे दोस्ती में बदल गया। अब उनका बहुत सा समय साथ-साथ बीतता। अक्सर सुलतान और डाकू दस्तर ख़ान पर बैठते, दावत खाते और शराब पीते। मौज में आकर डाकू अपनी डकैतियों की कहानियां सुलतान को सुनाया करता।

डाकू दौलतमन्द आदमी था। इसलिए सुलतान उसकी कहानियां सुनकर चुप्पी साध लेते थे।

एक रात डाकू और सुलतान दावत खा रहे थे। डाकू ने खूब पी रखी थी। तभी एक नौकर ने सुलतान के सामने तीतर का भुना हुआ मांस परोसा। उसे देखते ही डाकू ठहाका मार कर हंस पड़ा।

सुलतान ने अचरज में भरकर पूछा, "क्यों इतना हंस रहे हो ? क्या रसोई में कोई कमी है या नौकर ने कुछ ऐसा व्यवहार किया है कि तुम्हें हंसी आ रही है ?"

"सुलतान ! ऐसी कोई बात नहीं ! कोई बात नहीं..." डाकू हकबका गया।

"तो फिर यह हँसी किस बात की ?" सुलतान ने फिर पूछा।

डाकू क्षण भर मौन रहा। फिर तश्तरी में

परोसे गये मांस की तरफ इशारा करके बोला, "इस तीतर को देखकर मुझे एक पुरानी घटना याद आगयी। जब मैं उन पहाड़ी खोहों में रहा करता था और नीचे के पहाड़ी रास्ते पर लूटपाट किया करता था तो एक बार मैंने एक बूढ़े मुसाफिर को लूटा था। धन लुट जाने के बाद बूढ़े ने सोचा था कि मैं उसकी जान बख़्श दूंगा, पर जब मैंने तलवार उठाई तो उसे भय के साथ आश्चर्य भी हुआ। जहां तक नज़र जाती थी, कहीं कोई मनुष्य नज़र नहीं आता था। बूढ़े ने सिर उठाकर आसमान की तरफ देखा। वहां एक तीतर उड़ रहा था, उसे देख चिल्लाकर वह बोला, 'इस अत्याचार और इस हत्या के गवाह तुम्हीं हो !'— हुज़ूर, क्या आपने कभी सुना है कि कोई पक्षी मनुष्य का गवाह हो सकता है ?" अपनी बात सुनाकर डाकू फिर हंसने लगा।

सुलतान ने सारा किस्सा सुना और सोच में पड़ गये। उधर डाकू तीतर के मांस को उंगली से छूकर बोला, "ओह तीतर ! तुम उस बूढ़े के गवाह बनाये गये तीतर तो नहीं हो ? वही तीतर न भी सही, पर तुम उसके दूर के रिश्तेदार तो ज़रूर होंगे !" डाकू की हँसी फिर छूट पड़ी।

सुलतान की आँखों में अचानक गुस्से की सुर्खी दौड़ गयी। वे गरज कर बोले,

"तुम अपना खाना पूरा करो। तुमने जितनी बेरहमी से उस बूढ़े की हत्या की, उसकी गवाही इस तीतर पक्षी ने दी है। मरते वक्त उसके मन में इस तीतर पक्षी की गवाही के प्रति जो इतना विश्वास था, उसकी मैं दाद देता हूं।" सुलतान ने कहा।

डाकू ने डर से काँपते हुए रोटी का एक टुकड़ा मुँह में रख लिया। इसके बाद वह कौर नहीं खा सका, जान जाने का डर जो था।

सुलतान ने अपने सिपाहियों को पुकारा और डाकू को दिखाकर आदेश दिया, "इनसान के रूप में रहने वाले इस खूंख्वार जानवर को ले जाओ और इसका सिर काट डालो।"

डाकू का शिरच्छेद किया गया। मरते वक्त बूढ़े ने तीतर की जो गवाही मांगी थी, वह उसे मिल गई।

पक्षी और जानवर

नष्ट होनेवाले जानवर

प्रकृति ने अनेक प्रकार के जानवरों की सृष्टि की है। अगर हम लोग इनकी रक्षा का समुचित प्रबन्ध नहीं करेंगे, तो काल क्रम में उनके नष्ट हो जाने की आशंका है।

पिछली शताब्दी के मध्य भाग में उत्तरी अमरीका की प्रत्येक दावत में एक विशेष प्रकार का व्यंजन परोसा जाता था, जो उन दावतों का ख़ास आकर्षण होता था। वह व्यासेंजर पीजियन नाम के एक विशिष्ट कबूतर का मांस था। कबूतर की यह खास जाति डालों पर घोंसला बनाकर दलों में रहती थी। मिशिगन तथा पेन्सिलवेनिया के प्रदेशों में एक बरस के अन्दर डेढ़ करोड़ कबूतर आहार के लिए मारे गये। सन् १८८८ ई॰ तक कबूतरों की वह जाति नष्ट होगई।

कबूतर की इस विशेष जाति की तरह ही नष्ट होगयी पशु-पक्षियों की अनेक जातियां हैं। इतिहास के आधार पर आज तक मनुष्य ने १०० जातियों के जानवर और १६० प्रकार के पक्षियों का अंत किया है। सिनसिनारी के चिड़िया घर में उपरोक्त जाति का जो एक कबूतर बच रहा था, वह भी १९१४ में मर गया। इस समय १००० जातियों के जानवर तथा २०,००० जातियों के पौधे नष्ट होने की दशा में हैं। इस तरह नष्ट होनेवाले इन प्राणियों में तिमिंगल का स्थान विशेष रूप से उल्लेखनीय है।

क्यूबा तथा दक्षिण अमरीका में एक जमाने में रेशमी जटावाले कठफोड़वे हुआ करते थे। जिन पेड़ों पर वे निवास करते थे, उनके नष्ट होने के कारण अब वे भी गायब होते जा रहे हैं। बोर्नियो के ओरंगउटांग नाम के बिन पूंछवाले बन्दरों और दक्षिण अमरीका के जागूवार नाम के चीतों की भी यही दुर्दशा होती जा रही है।

अरबी ओरिकस नाम के जानवरों की रक्षा के लिए अरिजोना के पोनिकस नाम के चिड़िया घर में उनका निवास-स्थान बनाया गया है। नष्ट होरही ध्वामनीनी जाति की बतखों का पता लगा कर सर पीटर स्कॉट ने प्लिमब्रिज के पास उनकी रक्षा का प्रबन्ध किया है।

फोटो-परिचयोक्ति-प्रतियोगिता :: पुरस्कार ५०)

पुरस्कृत परिचयोक्तियां मई १९८५ के अंक में प्रकाशित की जायेंगी।

K. P. A. Swamy

Prabu Sankar

★ उपर्युक्त फोटो की सही परिचयोक्तियां एक शब्द या छोटे वाक्य में हों। ★ मार्च १० तक परिचयोक्तियां प्राप्त होनी चाहिए। ★ अत्युत्तम परिचयोक्ति को (दोनों परिचयोक्तियों को मिलाकर) ५० रु. का पुरस्कार दिया जाएगा। ★ दोनों परिचयोक्तियां केवल कार्ड पर लिखकर निम्न पते पर भेजें: चन्दामामा फोटो-परिचयोक्ति-प्रतियोगिता, मद्रास-२६

जनवरी के फोटो-परिणाम

प्रथम फोटो: आजादी का सुख!

द्वितीय फोटो: परतन्त्रता का दुख!!

प्रेषक: मोहनलाल गुप्ता, ग्राम एवं डा. बमरौली अहीर, जि. आगरा-२८२००१

'क्या आप जानते हैं?' के उत्तर

१. बोर्नियो २. एबीसिया ३. हैफा ४. साइद और स्वेज बन्दरगाह वाले ५. अमूदार्य.

Printed by B. V. REDDI at Prasad Process Private Ltd., and Published by B. VISWANATHA REDDI for CHANDAMAMA CHILDREN'S TRUST FUND (Prop. of Chandamama Publications) 188, Arcot Road, Madras-600 026 (India). Controlling Editor: NAGI REDDI.

पुरस्कार जीतिए

कॅमल

पहला इनाम (१) रु. १५/-
दूसरा इनाम (२) रु. १०/-
तीसरा इनाम (१०) रु. ५/-
१० प्रमाणपत्र
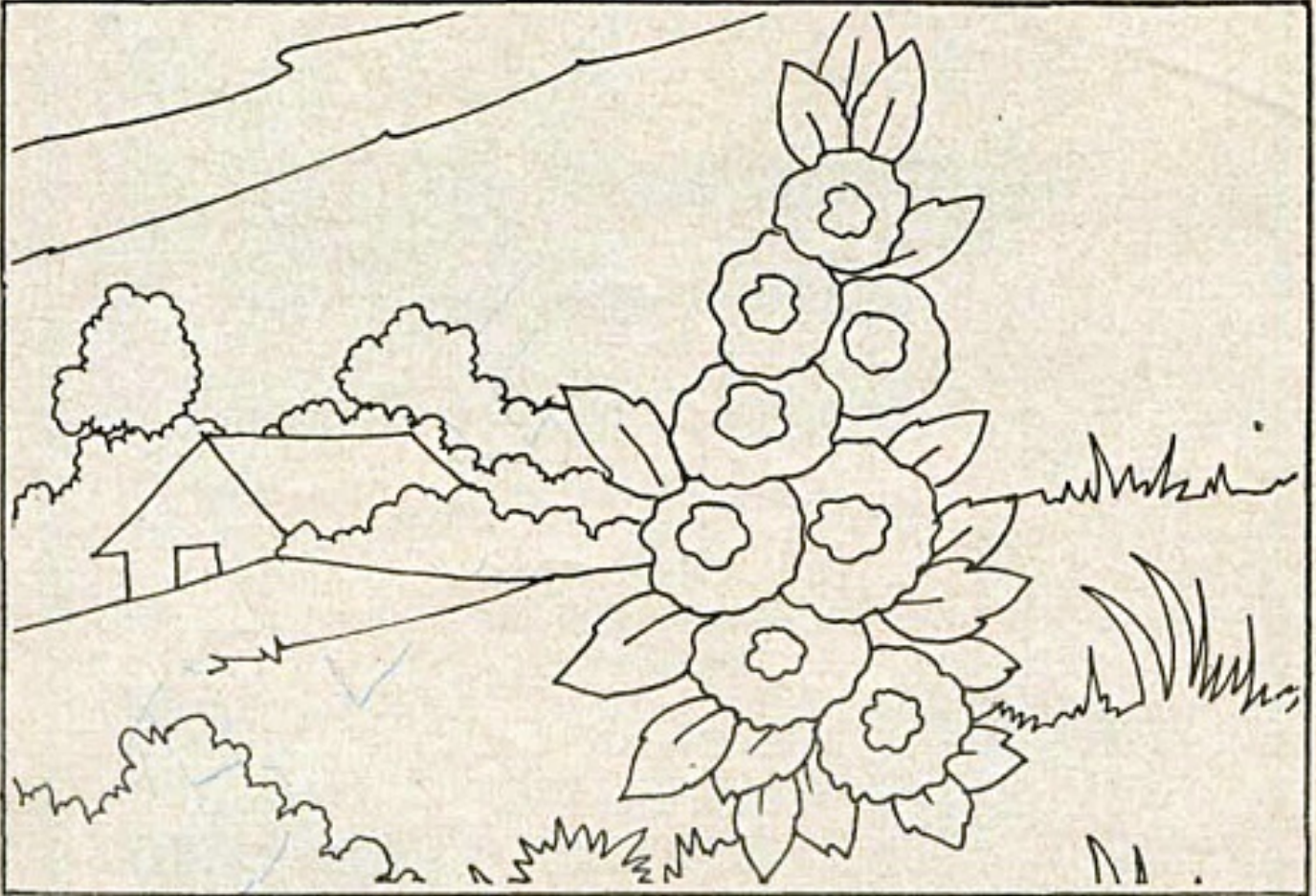
इस प्रतियोगिता में १२ वर्ष की उम्र तक के बच्चे ही भाग ले सकते हैं. ऊपर दिये हुए चित्र में पूरे तौर से कॅमल कलर्स रंग भरिए और उसे निम्नलिखित पते पर भेज दीजिये :

चंदामामा, पो. बॉ. नं. ११५०१, नरिमन पाईंट पोस्ट ऑफ़िस, बम्बई ४०० ०२१.

जजों का निर्णय अंतिम और सभी के लिए मान्य होगा. इस विषय में कोई पत्र-व्यवहार नहीं किया जायेगा.

कृपया कूपन केवल अंग्रेजी में भरिए.

Name:.. Age:....................

Address:..

....

प्रवेशिकाएं 31.3.1985 से पहले पहले भेजी जायें.

CONTEST NO 41

VISION/CPU/84122 HIN

मुड़-मुड़ के देखे संसार
सुपर रिन की चमकार!
सुपर
रिन
सुपर रिन की चमकार ज़्यादा सफ़ेद
किसी भी अन्य डिटर्जेंट टिकिया या बार से ज़्यादा सफ़ेद
हिन्दुस्तान लीवर का एक उत्कृष्ट उत्पादन

जब दाँतों की सड़न को मेरे बेटे ने पहचाना

फोरहॅन्स फ़्लोराइड

स्वाद वाला, झागवाला टूथपेस्ट
दाँत और मसूड़े दोनों की सुरक्षा करता है.

331 F 183 HIN

चॉकलेटी मज़ा हर एक के लिए !
nutrine
chocolate
Eclairs
more milk
more butter
more chocolate
बाहर कैरेमल,
बीच में चॉकलेट
nutrine Eclairs
nutrine Eclairs
एक साथ दो स्वाद
CLARION/NC/84210/HIN
nutrine
भारत की सबसे ज़्यादा बिकने वाली स्वीट्स
न्यूट्रीन कन्फेक्शनरी कं. प्रा. लि., चित्तूर, आ.प्र.
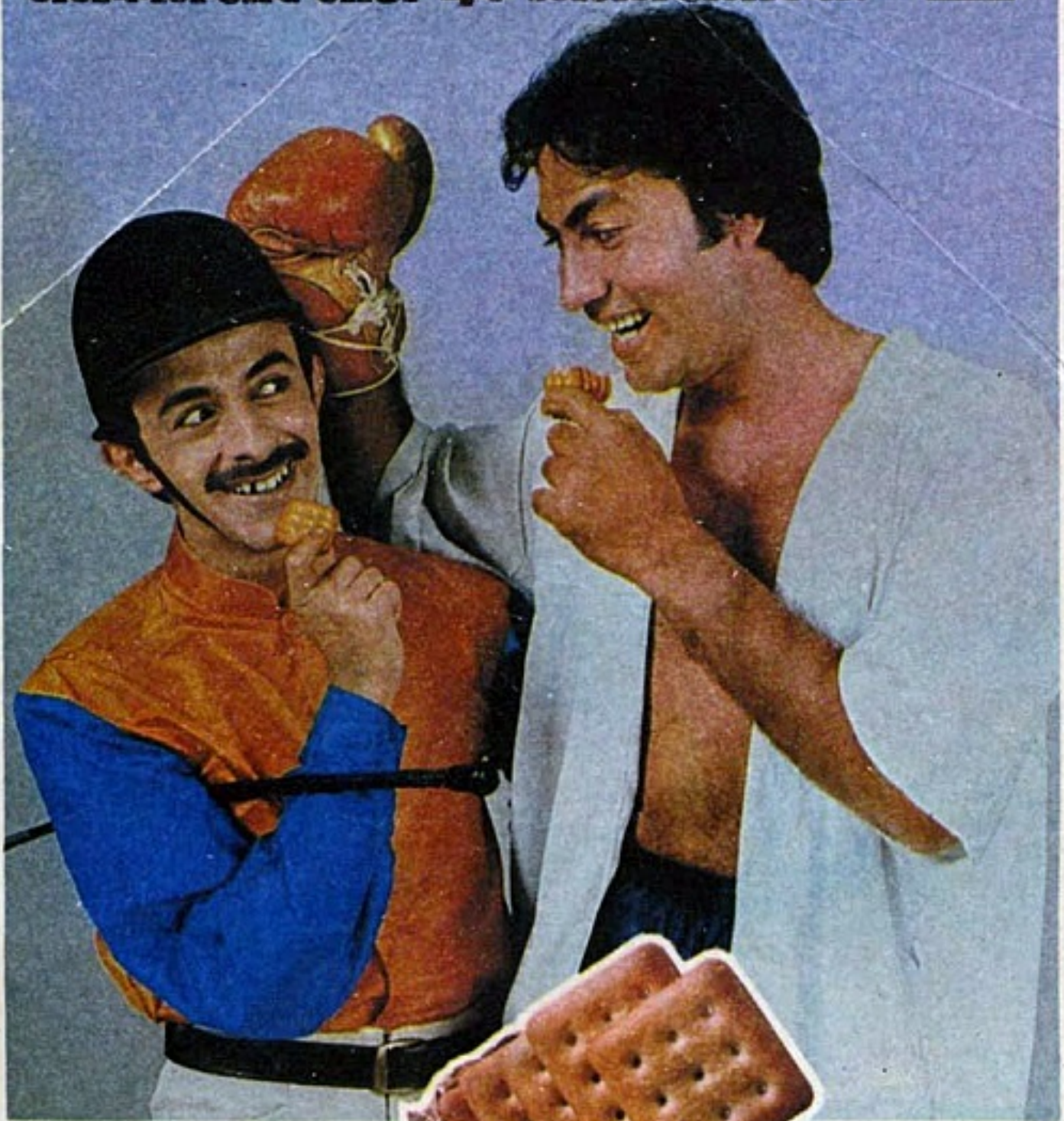
नमकीन और मीठा-एक मिलन अनोखा.
पारले
कोई कहे मीठे हैं,
कोई कहे नमकीन,
क्रैकजैक के स्वाद में,
खो जायें सब लेकिन.
PARLE Krackjack BISCUITS
सिर्फ यही पैक खरीदिये,
क्योंकि असली क्रैकजैक खुले
कभी नहीं बिकते, कभी नहीं.
वर्ल्ड सिलेक्शन
पारितोषिक विजेता.
पारले क्रैकजैक बिस्किट
— जिसका मीठा नमकीन स्वाद सबको ललचाये.
everest/84/PP/33-hn